मूल लेखक
महाकवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

माली

('गार्डनर' का हिंदी-अनुवाद)
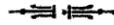
मूल-लेखक

महाकवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर
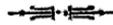
अनुवादक

सूर्य्यनारायण चतुर्वेदी

मुद्रक और प्रकाशक

श्रीकेसरीदास सेठ सुपरिंटेंडेंट

नवलकिशोर-प्रेस,

लखनऊ.

प्रथम बार १००० | १९३४ | मूल्य १॥)

"माली" पर कुछ चुनी हुई सम्मतियाँ

ख्यातनामा रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, प्रधान-हिन्दी-अध्यापक, हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशी:—

....आपका अनुवाद अच्छा हुआ है। मूल भावो की आपने हिन्दी में पूर्णतया रक्षा की है। इस पर मै आपको बधाई देता हूँ। आशा है आप मातृभाषा की सेवा के व्रती होकर उसके भांडार की शोभा बढावेंगे।

काशी
५—४—३४

श्यामसुन्दरदास

समालोचक-सम्राट्, हिन्दी के आचार्य, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी-प्रोफसर, हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशीः—

जीवन के कुछ मार्मिक खंड-चित्रो द्वारा आध्यात्मिक तथा कला-सबंधी तथ्यो की व्यंजना का इधर हिन्दी-गद्य-साहित्य में एक विशेष स्थान हो रहा है। कहने की आवश्यकता नही कि इसकी प्रवृत्ति विश्व-विख्यात श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ रचनाओ की देखादेखी हुई है। जिस प्रकार उनकी "गीताञ्जलि" के अनुकरण पर कुछ पुस्तके निकली है उसी प्रकार उनकी "माली" नामक गद्य-मुक्तको के ढङ्ग पर भी कुछ रचनाएँ हिन्दी मे देखने मे आती है। उसी "माली" का एक सुन्दर अनुवाद पं० सूर्य्यनारायण चौबे हिन्दी-पाठको के सामने लाये है।

एक तो इस ग्रन्थ का महत्त्व एक विशेष रचना-परम्परा के प्रवर्त्तक के रूप मे यो ही बहुत अधिक है, दूसरे इसका अनुवाद भी बहुत सुडौल उतरा है। भाषा साफ-सुथरी, चलती और प्रसंगो के अनुरूप है। अनुवादो मे जैसे खटकनेवाले प्रयोग, मुहावरे आदि प्रायः मिला करते है वैसे इसमे मुझे देखने मे नही आए। इससे अनुवादक का अपनी भाषा हिन्दी पर अच्छा अधिकार प्रकट होता है। हिन्दी के भावुक और सहृदय पाठको का तो यह पुस्तक कुतूहलपूर्ण अनुरंजन करेगी ही, साथ ही ऊँची कक्षाओ के छात्रो को अन्योक्ति पद्धति के नूतन विकास का परिचय कराने में भी विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।

दुर्गाकुण्ड, काशी
७—४—३४

रामचन्द्र शुक्ल

"कर्म्मवीर"-संपादक पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, खँडवा, सी. पी.:—

......मेरे लिए 'गार्डनर' रवि बाबू की सबसे कोमल कृति है। यो तो वे किसी किसी लिखावट में, अन्यत्र भी, बहुत कोमल और सूक्ष्म हो गये है, और तिस पर भी सहृदयता की साध के डोरे मे वे **गार्डनर** के अधिकांश पुष्पो को बाँधने में खूब ही सफल हुए है। अतः मेरी मालाकार के इन पुष्पों से हिमायत है।

आपके अनुवाद को पढ़ते समय, पठन की अनुभूति और चिन्तन की धारा में ऐसी रुकावट नहीं पड़ती जिससे कवि का देश दीख न पड़े, या उसमें पहुँचने मे मन के पैरो मे आपके अनुवाद के कारण कोई कँटीले गहने पड जाते हो। आपमें, इस पुस्तक की ओर इस स्नेह और पागलपन से खिचने का स्वाद पाकर, स्वाद के इसी प्यार की गुलामी ने मुझे, आपकी पुस्तक के पन्ने बहुत बेतकल्लुफ़ी से उलटते रहने, और उन विचारो को पढ़कर, आँखो के अन्दर के सीमा और रंग रहित स्थान मे, प्रायः एक माली की सूरत प्रदान करने का कई बार अभिलाष दिया है।

खँडवा, सी. पी.
१९-३-३४ } माखनलाल चतुर्वेदी

कवि-सम्राट् श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तः—

हिन्दी के लिए वह समय कितने गौरव का होगा जब उसमें विश्व के मनीषियो के ग्रन्थो का अध्ययन सुलभ हो जायगा। यह कार्य अच्छे अनुवादो से ही पूरा हो सकता है। परन्तु जहाँ अनुवाद का काम हीन दृष्टि से देखा जाय वहाॅं यह कैसे संभव है। हम लोग तो 'मौलिकता' का गर्व करते हैं! ऐसी दशा मे जब किसी योग्य जन को यह 'हीन कार्य' करते मैं देखता हूँ तब उसके त्याग पर मुझे श्रद्धा होती है। **गार्डनर** जैसे ग्रन्थ का अनुवाद करके आपने अपनी 'मौलिकता' पर चाहे अन्याय किया हो, परन्तु हिन्दी को एक वस्तु प्रदान की है……।

चिरगाँव
११–३–३४

मैथिलीशरण गुप्त

हिन्दी के सुलेखक तथा सुकवि पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्० टी०, इन्सपेक्टर ऑफ़ स्कूल्स, फैजाबाद डिवीज़नः—

मैंने श्रीसूर्यनारायण चतुर्वेदी द्वारा अनूदित महाकवि रवीन्द्र के 'माली' का हिन्दी संस्करण देखा। अनुवाद बहुत ही अच्छा हुआ है। उसके पढ़ने मे मूल के पाठ का आनन्द आता है। मूल के भावो को सरस, सरल और परिमार्जित भाषा में बड़ा सफलता से व्यक्त किया गया है। अनुवादक महाशय इसके लिए बधाई के पात्र हैं। कविवर रवीन्द्र की कृतियों का अध्ययन हिन्दीभाषा-भाषियो के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भाषा और भावों की दृष्टि से यह पुस्तक इन्टरमीजिएट कक्षा के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

१—७—३४ [श्रीनारायण चतुर्वेदी

भूमिका

श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस समय सर्वमान्य विश्व-विख्यात महाकवि है। उनकी कविता में इतने विचित्र भावो का समावेश रहता है कि उनका विश्लेषण करना सहज-साध्य नहीं। उनकी अधिकांश कविताएँ तो गूँगे के गुड़ खाने के समान केवल समझी जा सकती है, समझाई नहीं जा सकतीं। वह स्वाभाविक कवि है। उनकी सर्वतो-मुखी प्रतिभा विशेष रूप से कविता में ही विकास को प्राप्त हुई है। इसी लिए वह श्रेष्ठ कहानी-लेखक, गद्य-लेखक, समालोचक, हास्यरस के लेखक, औपन्यासिक आदि होने पर भी सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में ही पृथ्वीमण्डल में परिचित है।

उनकी रचनाएँ लोकप्रिय होने पर भी सबके लिए सुबोध नहीं हैं। उनकी **गीतांजलि** आदि में प्रकाशित कविताओ के विरुद्ध प्रायः यही अभियोग उपस्थित किया जाता है कि उनकी कविता अत्यन्त अस्पष्ट, जटिल या रहस्यपूर्ण है। इसमे संदेह नही कि ये कविताएँ अन्य साधारण कविताओ की भाँति स्पष्ट नही है और इन्हें घेरे हुए एक रहस्यमय कुहासा जमा हुआ है।

इसका कारण यही है कि किसी कवि की कविता साधारणतः तभी अस्पष्ट हो जाती है जब उसका वक्तव्य विषय उसके निकट स्वयं सुस्पष्ट नही होता। प्रत्येक श्रेष्ठ शिल्पी कुछ न कुछ संदेश देना चाहता है, उसका कुछ वक्तव्य होता है। किन्तु वह वक्तव्य, वह वाणी, स्वयं उस कवि के निकट सुस्पष्ट नही हो उठती। वास्तव में इसमें रवीन्द्रनाथ का कोई दोष नहीं है। भाव की गंभीरता या भाव की अतीन्द्रियता ने ही उनकी अधिकांश आध्यात्मिक कविताओं को अस्पष्ट बना दिया है। उनके ईश्वर का, उनके प्रियतम का कोई निर्दिष्ट रूप नही है। इसी से वह लिखते है—

आलो ये आज गान करे मोर प्राणे गो ;
के एलो मोर आँगने के जाने गो।

रवीन्द्र बाबू की आध्यात्मिक कविताएँ ही भाव की गंभीरता या अनुभूति की अतीन्द्रियता के कारण अस्पष्ट नहीं है, किन्तु उनकी जीवन से संबंध रखनेवाली, नीति से संबंध रखनेवाली अनेको रचनाएँ ऐसी हैं, जिनके अर्थ लोग अपनी-अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार अनेक प्रकार के करते है। रवीन्द्र बाबू ने एक "रक्तकवरी" नाटिका लिखी है। मैने बँगला पत्रो में पढ़ा था, किसी ने उसका विषय आध्यात्मिक बताया, किसी ने सामाजिक

श्रौर किसी ने राजनीतिक। इसी संग्रह में एक रचना दो पक्षियो पर है, जिनमें एक स्वतंत्र है, दूसरा परतं । उसका अर्थ चाहे आध्यात्मिक कीजिए, उन्हे जीव श्रौर ब्रह्म मानिए श्रौर चाहे राजनीतिक कीजिए श्रौर उन्हे स्वतंत्र श्रौर परतंत्र देश की जनता के प्रतिनिधि समझिए। तात्पर्य यह कि रवि बाबू की कविताश्रो को समझने के लिए श्रवश्य ही श्रच्छी विद्या, बुद्धि श्रौर श्रध्ययन होना चाहिए।

यह "माली" नाम का संग्रह उनकी कुछ चुनी हुई रचनाश्रो का संग्रह है। इसकी उत्तमता का प्रमाण यही है कि इसका श्रनुवाद श्रॅगरेज़ी मे भी हो गया है—श्रौर उसका श्रच्छा श्रादर तथा प्रचार हुश्रा है। प्रसन्नता की बात है कि हिंदी-पाठकों के सौभाग्य से हमारे मित्र श्रौर स्नेहभाजन पं० सूर्य्यनारायण चतुर्वेदी ने कठिन परिश्रम करके उसका यह सुन्दर श्रनुवाद प्रस्तुत किया है। रवि बाबू की गद्य रचनाश्रो के तो कई श्रनुवाद हिंदी में निकल चुके है, पर उनकी पद्य रचना का यह हिन्दी-श्रनुवाद कदाचित् पहला ही है। श्रनुवाद बहुत ही सरस, यथार्थ श्रौर प्रामाणिक हुश्रा है। चतुर्वेदीजी का यह प्रथम प्रयास होने पर भी श्रापने इसमें निःसन्देह संपूर्ण सफलता प्राप्त की है। इसके लिए हम श्रापको बधाई देते

है। इस अनुपम पुस्तक की भूमिका लिखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, यह मेरे लिए परम प्रसन्नता की बात है। खेद है, स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण मैं मनमानी विस्तृत भूमिका न लिख सका। यदि जीवन रहा तो इसके द्वितीय संस्करण मे विस्तृत भूमिका लिखकर रवि बाबू की रचनाओ की विशेषता हिन्दी-पाठको के सम्मुख रखने का प्रयास करूँगा।

अन्त में ऐसी उच्च कोटि की पुस्तक प्रकाशित करने के लिए नवलकिशोर-प्रेस के स्वत्वाधिकारी मुंशी श्रीरामकुमारजी भार्गव महोदय को मै धन्यवाद देता हूँ।

रानीकटरा, लखनऊ
११–५–३४

रूपनारायण पाण्डेय

निवेदन

महाकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की जिस महान् कृति का अनुवाद लेकर मैं आज पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो रहा हूँ उसकी श्रेष्ठता एवं सर्वाङ्गीण सुन्दरता के विषय में विज्ञ पाठकों को कुछ बताने की चेष्टा करना मूल-लेखक एवं पाठक दोनों के लिए अपमानजनक होगा। हाँ, यह कह देना अवश्य उचित प्रतीत होता है कि पुस्तक-लेखक अथवा अनुवादक के रूप में मेरा यह सर्वप्रथम प्रयास है। अतः, प्रस्तुत पुस्तक में त्रुटियों का होना संभव ही नहीं, स्वाभाविक भी है।

इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि जिन गीतों का अंग्रेज़ी रूपान्तर Gardener के नाम से प्रकाशित हुआ है वे सभी महाकवि ठाकुर महाशय की प्रतिभाशालिनी लेखनी से निःसृत तथा स्वभाव से ही मृदुल बँगला-भाषा में रचे गए हैं। अतएव उनका रूपान्तर सर्वथा पूर्ण नहीं कहा जा सकता, यद्यपि रूपान्तरकार स्वयं ठाकुर महोदय ही हैं। 'गार्डनर' की भूमिका में वे स्वयं कहते हैं कि अनुवाद स्वच्छंदता के साथ किया गया है तथा आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र उसमें काट-छाँट की जाने के अनि-

रिक्त कहीं-कहीं पर तो गीतों का भावमात्र ही व्यक्त किया गया है।

ऐसी परिस्थिति में अनुवादक का कार्य कितना कठिन हो जाता है इसे भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। बँगला के समान मधुर एवं श्रुति-प्रिय भाषा के गीतों का अनुवाद स्वयं अधिकारी मूल-लेखक द्वारा अंग्रेज़ी में हुआ और उस शुष्क तथा नीरस भाषा से पुनः हिन्दी में अनुवाद करना तथा उसे कोमल और भावपूर्ण बनाने की चेष्टा करना बालू में से तेल निकालने के समान है। सौभाग्य की बात यह है कि अंग्रेज़ी रूपान्तरकार स्वयं ठाकुर महाशय हैं तथा उनका अनुवाद प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। फिर भी, महाकवि के हृदय तक पहुँचना तथा उनके इंगित, अस्पष्ट और व्यक्ताव्यक्त भावों का समझना काम रखता है।

दूसरा कारण यह भी है कि मैं बँगला-भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ अतः अनुवाद करते समय मेरे लिए यह भी संभव न था कि मैं मूल बँगला गीतों को ढूँढ़ निकालता और उनसे सहायता लेता। ऐसी अवस्था में मैंने यही उचित समझा कि अंग्रेज़ी अनुवाद को ही मूल मानकर आगे बढ़ा जाय।

अनुवाद कैसा हुआ है, इसका निर्णय पारखी पाठक ही कर सकते हैं। हिन्दी-संसार के एक प्रमुख प्रकाशक

जो स्वयं बँगला एवं हिन्दी के अच्छे पंडित हैं उनकी यह सम्मति है कि हिन्दी के कतिपय अनधिकारी अनुवादकों की बदौलत 'महाकवि' की रचनाओं की लोकप्रियता सर्वथा जाती रही है तथा ऐसे अयोग्य और अनुत्तरदायी अनुवादक किसी भी लेखक के सबसे बड़े शत्रु हैं। अतः अनुवाद का संशोधन करते समय मैं बराबर सचेष्ट रहा कि कहीं मेरी भूलों से महाकवि की विश्वव्यापिनी कीर्त्ति कलङ्कित न हो जाय। यदि मैं अपने इस प्रयास में थोड़ा भी सफल हुआ तो मेरे लिए यही सबसे बड़ा पारितोषिक होगा।

अनुवाद करने के ढङ्ग तथा उसकी भाषा के संबंध में दो शब्द आवश्यक प्रतीत होते हैं। अनुवाद करते समय मैंने सतत यह चेष्टा की कि अनुवाद सच्चा तथा अविकल हो। 'अविकल' शब्द से मेरा तात्पर्य्य 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' नहीं है। मेरा आशय केवल यह है कि मैंने स्वच्छंद अनुवाद नहीं किया कारण कि वैसा करने की चेष्टा में मूल बँगला गीतों के भावों से (जिनका मुझे ज्ञान भी नहीं) बहुत दूर जा पड़ने का भय था। अतः अनुवाद अंग्रेज़ी मूल से मिलता-जुलता, मुहाविरेदार और स्वाभाविक करने की मैंने चेष्टा की है।

अब रही बात भाषा की। इसके संबंध में एक विख्यात कवि ने यह कहा था कि इस अनुवाद की भाषा काफ़ी

Dramatic नहीं बन पड़ी है । मैं यह स्वीकार करता हूँ परन्तु भाषा को Dramatic बनाने का मेरा साहस न पड़ा और न मैंने अनुवाद की भाषा से पुनः छेड़-छाड़ की। मुझे भय था कि कहीं भाषा Dramatic से Melo-dramatic न हो जाय !

नवलकिशोर बुक-डिपो के व्यवस्थापक पं० हरदत्तजी पंत तथा उनके सहकारी प० छुन्नूलालजी द्विवेदी का मैं सविशेष रूप से आभारी हूँ। पुस्तक छपते समय इसके संशोधन तथा परिमार्जन में जितनी सुविधाएँ उन्होंने मुझे दी हैं वे वर्णनातीत हैं। इसके प्रकाशन के संबंध में उनका सत्परामर्श यदि मुझे प्राप्त न होता तो कौन जाने इसका प्रकाशन कब और किस रूप में होता।

वसंत पंचमी ११६०
कॉल्विन ताल्लुक़ेदार कालेज,
लखनऊ। } सूर्य्यनारायण चतुर्वेदी।

प्रकाशक के दो शब्द

"माली" डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्व-विख्यात पुस्तक Gardener का हिन्दी-अनुवाद है। Gardener के मूल गीतो का अनुवाद स्वयं ठाकुर महोदय ने बँगला से ऑगरेज़ी मे किया है। उस अनुवाद को गद्य न कहकर गद्य-काव्य कहना अधिक उचित होगा।

ठाकुर महोदय की इस ढङ्ग की पुस्तकों के अच्छे हिंदी-अनुवाद बहुत कम प्रकाशित हुए है। जो इने-गिने हैं भी, वे ऐसे नहीं कि उनको सफल अनुवाद कहा जा सके। साथ ही साथ गद्य-काव्य-ग्रन्थो की संख्या हिन्दी में नहीं के बराबर है। साहित्य के इस सुन्दर अङ्ग की कमी हिन्दी में बहुत खटकती है। इसी कमी को दूर करने की दृष्टि से हम प्रस्तुत पुस्तक को लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हो रहे है। आशा है, इससे कवीन्द्र

रवीन्द्र के "गार्डनर" के भावों को समझने में हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों को बड़ी सहायता मिलेगी। साथ ही, मातृभाषा के एक शून्य-प्राय अङ्ग की पूर्त्ति भी होगी। यदि पाठकों को यह पुस्तक पसन्द आई तो हम निकटतम भविष्य में ठाकुर महोदय के अन्य अमर ग्रन्थों के अनुवाद भी उनकी सेवा में उपस्थित करेंगे। इत्यलम्।

समर्पण

यह अनुवाद तुम्हारी

ही प्रेरणा से

आरंभ हुआ था

अतएव यह

तुम्ही को

समर्पित

है।

तुम्हारा—

"वही"

माली

१

सेवक—अपने दास पर दया कीजिए, मेरी रानी !

रानी—सभा विसर्जित हो चुकी है तथा हमारे और सब सेवक चले गये हैं। तुम ऐसे कुसमय क्यो आये हो ?

सेवक—जब श्रीमती ने औरों से अवकाश पा लिया, तभी तो मेरी पारी आई है ! मैं केवल यह पूछने आया हूँ कि आपके इस अन्तिम सेवक के लिए भी कुछ आज्ञा है ?

रानी—इतने विलम्ब के पश्चात् आकर तुम आशा ही क्या करते हो ?

सेवक—मुझे अपने पुष्पोद्यान का माली बना लीजिए !

रानी—है ! यह कैसी मूर्खता है ?

सेवक—मैं अपने अन्य कार्य छोड़ दूँगा। मैं अपनी तलवार और बरछी तिरस्कारपूर्वक परित्याग करता हूँ। मुझे चाहे दूर के राजदरबारों में न भेजिए, मुझे नये-नये विजय प्राप्त करने को न कहिए, परन्तु,—मुझे अपने पुष्पोद्यान का माली बना लीजिए।

रानी—तुम काम कौन-कौनसे करोगे?

सेवक—आपके सावकाश काल मे आपकी सेवा करूँगा। मैं उन हरित पथों को ताज़ा रखूँगा जिन पर श्रीमती सवेरे टहलती है और जहाँ श्रीमती के चरण पग-पग पर मरणोत्सुक पुष्पो द्वारा उल्लाससहित अभिनन्दित होगे।

मैं आपको सप्तपर्ण वृक्ष की उन डालियो के बीच झूला झुलाया करूँगा जहाँ सायंकालीन शशि पत्तियो के झुरमुट के बीच में से आकर आपके अचल को चूमने की चेष्टा करेगा।

मैं आपकी शय्या के सिरहाने जलनेवाले दीपक को सुगन्धित तैल्य से परिपूर्ण रखूँगा और आपके पैर रखने की चौकी को केशर-रंजित चन्दन से चित्र-विचित्र रूप से सजाया करूँगा।

रानी—तुम पारितोषिक क्या लोगे?

सेवक—रानी! आपकी कमल-कलिका-सुकोमल नन्हीं

कलाइयों को निज करों में लेकर उनमें पुष्प-कंकण पहिनाने की अनुमति पाना ही मेरे लिये पर्य्याप्त पारितोषिक होगा तथा आपके सुकुमार पैरों को अशोक-पुष्पों के रस से रंजित करने तथा कदाचित् उनमें लगी हुई धूलि को अपने ओष्ठों के चुम्बनों द्वारा निवारण करने की आज्ञा पाना ही हमारे लिए महान् पुरस्कार होगा !

रानी—अच्छा, भृत्य ! तुम्हारी प्रार्थना स्वीकृत हुई। तुम मेरी पुष्प-वाटिका के माली नियुक्त हुए !!

२

"हे कवि ! अब तुम्हारी जीवन-सन्ध्या निकट है और तुम्हारे बाल श्वेत हो चले है ।

क्या तुम अपनी इस एकाकी ध्यानावस्थितावस्था में कुछ परलोक का भी सन्देश सुनते हो ?

कवि ने कहा, "हाँ, सन्ध्या तो हो चली है, पर मै केवल इस प्रतीक्षा में बैठा हुआ हूँ कि कदाचित् कोई इस अतिकाल मे भी गाँव से इधर आ निकले ।

"मैं इस अपेक्षा में हूँ कि कदाचित् दो बिछुड़े हुए तरुण, प्रेमी-हृदयों का कहीं परस्पर संयोग हो जाय और उन दोनों के सतृष्ण नेत्र मुझसे याचना करे कि मैं अपने संगीत द्वारा उनकी निस्तब्धता भंग करूँ ।

"यदि मैं जीवन से विरक्त होकर मृत्यु एवं परलोक की चिन्ता करने बैठूँ तो उनके लिए उत्कट प्रेम की उन्मादिनी रागिनी कौन अलापे ?

"सायंकालीन नक्षत्र-माला अन्तर्हित हो रही है ।

"चिता की अग्निशिखा नीरव नदी के किनारे धीरे-धीरे बुझ चली है ।

"क्षीण चन्द्रमा के धुँधले प्रकाश में, स्वर में स्वर मिला कर, गीदड़ खँडहरों के प्रकोष्टों से चिल्ला रहे हैं।

"यदि कोई बटोही ऐसे समय अपना घर छोड़कर रात्रि का आनन्द लेने आवे और नतमस्तक होकर अन्धकार का विभीषिकामय झन्‌झन्‌ शब्द सुनने लगे तो, यदि मैं उस समय अपना द्वार बन्द करके सांसारिक मायाजाल से मुक्त होने के प्रयत्न में लगूँ तो उसके कानों मे जीवन का गूढ़ रहस्य कौन कहे ?

"यदि मेरे केश श्वेत ही हो रहे हैं तो इसमें कौनसी अनूठी बात है।

"मैं सदैव इस ग्राम के बालकों की भाँति अल्पवयस्क तथा वृद्धों की भाँति वृद्ध रहता हूँ।

"उनमें से किसी के मुख पर तो भोली एवं मधुर मुसकान है और किसी के नेत्रों में चतुरतापूर्ण ज्योति।

"कुछ की आँखों में दिन के समय उमग आनेवाले अश्रु कण हैं और कुछ के अश्रु अन्धकार में लीन हैं।

"इन सभी को हमारा प्रयोजन है और इसीलिए मुझे परलोक की चिन्ता करने का भी समय नहीं है।

"मैं तो प्रत्येक व्यक्ति का समवयस्क हूँ! यदि मेरे बाल श्वेत ही हो गये तो इससे क्या ?"

३

प्रभातकाल ही मैंने अपना जाल समुद्र मे डाला।

अन्धकारमय अतल से मैंने चित्र-विचित्र वस्तुएँ खींच निकालीं। कोई मुसकान की भाँति चमक रही थीं, कुछ अश्रु की भाँति कान्तिवान् थीं और कुछ नवागता वधू के आरक्त कपोलों की भाँति अरुणिमामय थी।

जिस समय मै अपनी दिन-भर की कमाई लेकर घर पहुँचा, उस समय मेरी हृदयेश्वरी उद्यान में बैठी किसी पुष्प की पँखड़ियों को तोड़-तोड़कर अपना मन बहला रही थी।

मैं एक क्षण को ठिठका और फिर, जो कुछ मैंने पाया था, उसके पैरो के पास रखकर चुपचाप खड़ा हो गया।

उन वस्तुओं पर दृष्टिनिक्षेप मात्र करके उसने कहा, "यह विचित्र वस्तुएँ हैं क्या? मैं इनका भला क्या करूँगी?"

मैंने लज्जा से सिर झुका लिया और मन में सोचा, "मैंने न तो इन वस्तुओं के हेतु युद्ध ही किया है और न इनको बाजार से ही खरीदा है। फिर भला मेरी प्रेमिका के लिए यह उपयुक्त उपहार हो ही कैसे सकते थे?"

मैं रात-भर एक-एक करके उन वस्तुओं को मार्ग में फेंकता रहा।

प्रातःकाल यात्रीगण आये, और—उन्हें उठा-उठाकर दूर देशों को ले गये।

४
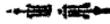
आह, दुर्दैव ! उन्होंने मेरा घर हाटवाले गाँव के पथ पर क्यों बनाया ?

वे अपनी लदी हुई नौकाएँ लाकर मेरे ही वृक्षों के समीप बाँधती हैं !

वे यहाँ स्वेच्छानुसार आती-जाती हैं तथा स्वच्छन्दता-पूर्वक विचरण किया करती हैं !

मैं केवल बैठा-बैठा उनको देखा करता हूँ और मेरा सारा समय यों ही व्यतीत हो जाता है !

मैं उन्हें यहाँ से हटा भी तो नहीं सकता, और,—मेरा सम्पूर्ण दिन यों ही कट जाता है।

रात-दिन उनके पद-शब्द मेरे द्वार पर सुनाई दिया करते हैं।

मैं व्यर्थ ही तो चिल्लाता हूँ, "आह ! मैं तुमसे परिचित नहीं हूँ।"

उनमें से कुछ तो मेरी अंगुलियों से परिचित हैं और कुछ मेरी नासिका से। मेरी रगो में बहता हुआ रक्त भी तो उनसे परिचित-सा ज्ञात होता है ! और,—कुछ मेरे स्वप्नों की-सी परिचित भी बोध होती हैं !!

मैं उनको लौटा देने में असमर्थ हूँ और विवश होकर उनसे कहना ही पड़ता है—"जिसकी भी इच्छा हो मेरे घर आवे, और अवश्य आवे !"

सबेरे देवमन्दिरों में घंटा बजता है।

वे अपनी-अपनी डोलचियाँ हाथों में लिये हुए आती हैं।

उनकी एड़ियाँ तो गुलाब के फूल की भाँति गुलाबी रंग की हैं तथा ऊषाकाल की लालिमा उनके मुखों पर विराजमान है।

मैं उनको लौटा देने में असमर्थ हूँ! मैं उन्हें पुकार कर कहता हूँ, "मेरी वाटिका में पुष्प-चयन के हेतु आओ, इधर आओ!"

मध्याह्न के समय राजद्वार पर घंटा बजता है।

मैं नहीं जानता कि वे क्यों अपने समस्त काम छोड़कर मेरे ही कुञ्ज के समीप ठिठकती हैं।

उनके केश के फूल पीले पड़कर मुरझा गये हैं और उनकी बाँसुरी के स्वर क्लान्त हैं।

मैं उनको लौटा तो सकता ही नहीं और पुकारकर उनसे कहता हूँ, "मेरे वृक्षों के नीचे अत्यन्त शीतल छाया है। मित्रो ! यहाँ आओ !!"

माली

रात्रि के समय वनस्थली में झींगुर झंकार करते है।

है! यह कौन धीरे-धीरे मेरे द्वार पर आकर हौले-हौले साँकल खटखटाता है?

मैंने अस्पष्ट रूप से उसकी मुखाकृति देखी, हम दोनो ही चुप रहे और चारो ओर रात्रि की निस्तब्धता का राज्य बना रहा——

मैं भला अपने मूक अतिथि को कैसे लौटा सकता था? मैं अन्धकार में ही उसके मुखकमल का अवलोकन करता रहा तथा यों ही स्वप्न की घड़ियाँ व्यतीत हो गई!!

५

मै व्यग्र हो रहा हूँ। मैं सुदूरवर्ती वस्तुओ के लिए तृषित हूँ।

मेरी अन्तरात्मा अस्पष्ट भविष्य का अंचल स्पर्श करने के हेतु विह्वलता से तड़प रही है।

महान् भविष्यत्! अहा! तेरी वंशी का तीव्र आमंत्रण!!

मैं भूल-भूल जाता हूँ कि मुझे उड़ने को पंख नही हैं और मैं सर्वदा के लिए इसी स्थान पर बन्दी हूँ।

मैं उत्सुक हूँ, अनिद्रित हूँ! मैं परदेश में किसी एक अपरिचित व्यक्ति की भाँति हूँ!!

तेरी वायु आ-आकर मुझे अस्फुट शब्दों में एक असम्भवसी आशा दिलाती है।

तेरी भाषा मेरे हृदय से आत्मीय की भाँति परिचित है।

हे दुष्प्राप्य वस्तु! अहा, तेरी वंशी का तीव्र आमत्रण!!

मैं भूल जाता हूँ, बार-बार भूल जाता हूँ कि मैं तेरे मार्ग से अपरिचित हूँ तथा मेरे पास सपक्ष घोड़ा भी तो नही है।

मैं अत्यन्त चंचल हो रहा हूँ। मैं अपने हृदय में भी भटक रहा हूँ।

माली

क्लान्ति की घड़ियों की प्रखर धूप में तेरा विस्तृत आकार नील गगन में कैसे-कैसे रूप अंकित करता है !

हे सुदूरतम अन्त ! अहा, तेरी वंशी का तीव्र आमंत्रण !!

मैं फिर-फिर भूल जाता हूँ कि जिस मकान का मैं अकेला निवासी हूँ, उसके सभी द्वार बन्द हैं ।

६
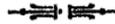
पालतू पक्षी एक पिंजड़े में था और स्वतन्त्र पक्षी जंगल में।

कालान्तर वे मिले, यह भी उनके भाग्य का एक विधान था।

स्वच्छन्द पक्षी ने कहा, "मेरे प्यारे, आओ वन को उड़ चलें।"

पिंजरबद्ध पक्षी ने धीरे से कहा, "तुम्हीं यहाँ न आ जाओ! हम दोनों ही पिंजड़े में रहेंगे।"

स्वच्छन्द पक्षी ने कहा, "पिंजड़े के छड़ों के बीच में हम अपने पंख कैसे फैला सकेंगे?"

स्वत्वहीन पक्षी बोला, "और बाहर आकाश में मुझे बैठने को अड्डा कहाँ मिलेगा?"

स्वच्छन्द पक्षी ने कहा, "मेरे प्यारे! सुन्दर वन-प्रदेश के गीत गाओ।"

पिंजर-पक्षी ने उत्तर दिया, "अजी, मेरे पास बैठो तो मैं तुमको बुद्धिमानों की वक्तृता सिखाऊँ।"

वन्य पक्षी ने कहा, "नहीं, आह नहीं, गीतें कभी सिखाई नहीं जा सकतीं।"

पिंजर-पक्षी ने कहा, "हाय खेद ! मुझे वन की रागिनी ही नही आती।"

यद्यपि उनके प्रेम में पारस्परिक चाह की प्रगाढ़ता है, परन्तु वे कभी भी पंख मिलाकर साथ-साथ नहीं उड़ सकते।

पिंजड़े के छड़ो के बीच से वे एक दूसरे की ओर देखते है, परन्तु उनकी एक दूसरे से परिचित होने की इच्छा सर्वथा व्यर्थ है।

वे आतुर होकर पंख फड़फड़ाते हैं और गाते है:—

"मेरे प्यारे, मेरे तनिक और समीप आओ।"

स्वच्छन्द पक्षी ने कहा, "यह असम्भव है। मुझे पिंजड़े के बन्द द्वार का भय है।"

पिंजरस्थ पक्षी धीरे से बोला, "हाय, मेरे तो पंख ही शक्तिहीन तथा निर्जीव हो गये हैं।"

७

माँ! युवा राजकुमार आज हमारे द्वार से होकर निकलेगे! आज मैं घर के काम-काज कैसे करूँ?

मुझे ज़रा बाल सँवारना तो बता दो और यह तो कहो कि मैं वस्त्र कौन से पहिनूँ!

तुम मेरी ओर आश्चर्य से क्यो देख रही हो, माँ!

मुझे भली भाँति ज्ञात है कि वह एक बार भी आँख उठाकर मेरी खिड़की की ओर नही देखेंगे। मुझे मालूम है कि वे क्षणमात्र मे ही मेरी दृष्टि से ओझल हो जायँगे और प्रतिपल क्षीण होती हुई केवल वंशी की ध्वनि ही सिसकी-सी लेती हुई मुझे दूर से सुनाई पड़ेगी।

परन्तु, युवा राजकुमार हमारे द्वार पर से होकर निकलेंगे तो? बस, मैं केवल उसी एक क्षण के लिए अपना सर्वोत्तम वस्त्र धारण करूँगी।

माँ! युवा राजकुमार हमारे द्वार से निकले और उस समय प्रातःकालीन सूर्य की रश्मियाँ उनके रथ पर झलमला रही थीं।

मैंने आवेशपूर्वक अपने मुख पर से घूँघट हटा दिया

और अपना हीरे का हार गले से उतारकर उनके मार्ग में फेंक दिया।

हैं! तुम मेरी ओर आश्चर्य से क्यों देख रही हो, माँ?

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि उन्होंने मेरा हार मार्ग से उठाया नहीं। मैं यह भी जानती हूँ कि वह पहियों के नीचे पड़कर चूर-चूर हो गया तथा उस स्थान पर धूलि में केवल एक लाल चिह्नमात्र बच रहा है! किसी को यह भी तो नहीं ज्ञात है कि मेरा उपहार किसके लिए अथवा क्या था।

परन्तु, युवा राजकुमार मेरे द्वार से होकर निकले तो, और, मैंने अपना वह रत्नहार अपने वक्षःस्थल से खींचकर उनके मार्ग में फेंक तो दिया?

८

जब मेरे सिरहाने का दीपक झिलमिलाकर बुझ गया तब मैं प्रभातकाल के पक्षियो के साथ-साथ जाग पड़ी।

मैं एक सद्य फूलों की माला अपने ढीले जूड़े में पहिन-कर अपनी खुली खिड़की में आकर बैठ गई।

युवा पथिक प्रभात के अरुण प्रकाश में रास्ते से निकला।

उसके गले में एक मोती की माला पड़ी हुई थी और बाल रवि की रश्मियाँ उसके मुकुट पर पड़कर झलमला रही थी। वह हमारे द्वार पर रुका तथा बड़ी उत्सुकता से उसने मुझसे पूछा, "वह कहाँ है ?"

परन्तु, लज्जा के भय से मैं न कह सकी, "हे युवा पथिक, वह मैं ही हूँ।"

गोधूली बेला हो गई थी और दीपक अभी तक नहीं जले थे।

मैं जल्दी-जल्दी अपने बालो को सँवार रही थी।

युवा पथिक अस्ताचलगामी सूर्य के धुँधले प्रकाश में अपने रथ पर आया। उसके घोड़ो के मुख से फेन निकल रहा था और उसके वस्त्र धूल-धूसरित थे।

माली

वह मेरे द्वार पर उतरा और क्लान्त स्वर में उसने पूछा, "वह हैं कहाँ ?"

लज्जा के मारे फिर भी मेरे मुँह से न निकला "श्रान्त पथिक, मै ही वह हूँ।"

वसन्तऋतु की रात्रि का समय है। मेरे कमरे में दीपक जल रहा है।

दक्षिणी वायु धीरे-धीरे चल रही है। बकवादी तोता अपने पिंजड़े में सो रहा है।

मेरी कंचुकी मयूर-कंठ के रंग की है और मेरी ओढ़नी नवीन दूर्वादल की भाँति हरितवर्ण की है।

मै खिड़की के पास धरती पर बैठी शून्य पथ की ओर देख रही हूँ।

रात-भर अन्धकार में बैठी हुई मै गुनगुनाती रही, "मै ही वह हूँ, निराश पथिक! मैं ही वह हूँ !!"

६

जब रात्रि के समय मैं अकेले सहेट-स्थली को जाती हूँ तो न तो पक्षीगण ही राग अलापते हैं और न पवन ही संचरित होती है। मार्ग के दोनो ओर पंक्तिबद्ध गृह चुपचाप खड़े रहते हैं।

यह मेरे ही तो पैर के नूपुर हैं जो प्रत्येक पद पर जोर से बजने लगते हैं! मैं लज्जा से दबी जाती हूँ।

जब मै अपने छज्जे पर बैठकर उनकी पदध्वनि सुनने की चेष्टा करती हूँ, उस समय वृक्षो की पत्तियाँ निस्तब्ध रहती है और सोते हुए योद्धा के घुटने पर पड़ी हुई तलवार की भाँति नदी का जल भी नीरव हो जाता है।

यह मेरा ही तो हृदय है जो बुरी तरह धड़कने लगता है! मैं उसे कैसे शान्त करूँ?

जब मेरे प्राणनाथ मेरे पार्श्व में आ बैठते हैं और जब मेरी देह सिहर उठती है तथा नेत्र की पलकें नीचे को झुक जाती हैं तब रात्रि अन्धकारमय हो उठती है, पवन प्रवाहित होकर दीपक बुझा देता है और मेघ नक्षत्रमंडल पर आवरण डाल देते हैं।

यह मेरे ही तो वक्षःस्थल का रत्न है जो चमक-चमक कर प्रकाश सा किये देता है। मैं इसे कैसे छिपाऊँ?

१०

बहू ! अब अपना काम-काज रहने दे। सुन, देख पाहुन आ गया है।

क्या तू सुनती नही कि वह धीरे-धीरे द्वार की साँकल हिला रहा है ?

देखना, कहीं तेरे नूपुर ज़ोर से न बज उठें और तेरे पैर उससे मिलने के हेतु कहीं अनुचित शीघ्रता से न उठै।

बहू, अब काम-काज रहने भी दे। सन्ध्या समय पाहुन आ गया है।

डरो मत बहू, यह शब्द भयानक आँधी का नहीं हो रहा है।

वसन्तकालीन रात्रि का पूर्ण चन्द्र उदीयमान हो रहा है, आँगन मे परछाहीं कुछ धुँधली सी पड़ रही है तथा आकाश आलोक से उज्ज्वल है।

यदि ऐसी ही इच्छा है तो अपने मुख पर घूँघट खींच लो और यदि डरती हो तो द्वारतक अपने साथ दीपक लेती जाओ।

आँधी नहीं चल रही है बहू, डरो नहीं।

यदि तुझे लज्जा ही लगती हो तो उससे भाषण न करना और, जब उससे तेरा साक्षात् हो, तब द्वार के एक ओर खड़ी हो जाना।

यदि वह तुझसे कुछ पूछे तो यदि तेरी इच्छा हो तो तू अपनी आँखे चुपचाप नीची कर लेना।

जब तू उसके आगे हाथ मे दीपक लिए हुए उसको पथ-प्रदर्शनपूर्वक अन्दर लावे तब अपने हाथ के कंकणों को मत बजने देना।

यदि तुझे लज्जा ही मालूम देती हो तो उससे भाषण न करना।

बहू, क्या तूने अभी अपने कार्य समाप्त नहीं किये? सुन, पाहुन आ गया है।

क्या अभी तक तूने गोशाला का दीप आलोकित नही किया?

क्या सन्ध्याकाल के पूजन की थाली तूने अभी नहीं सँजोई?

क्या तूने अपनी माँग में सौभाग्य-सिन्दूर नही भरा है और क्या अपने रात्रि के शृंगार से तू अभी निवृत्त नही हुई है?

बहू, सुनती है, पाहुन आ गया है।

अब काम-काज रहने दे!

११

तुम जैसी भी हो, चली आओ। शृंगार में अब अधिक देर न लगाओ।

यदि तुम्हारे सँवारे हुए केशों की वेणी ढीली हो गई है, माँग सीधी नहीं है तथा कंचुकी के बन्द नहीं लगे हैं तो इसकी चिन्ता न करो।

तुम जैसी भी हो, चली आओ। शृंगार मे अब अधिक देर न लगाओ।

तुम दूर्वामय पथ पर से होकर शीघ्रता से आओ।

यदि ओस से तुम्हारे पैर का महावर छूटता है, पैर के नूपुर के छल्ले ढीले पड़ गये हैं अथवा हार के मोती गिर रहे हैं तो कुछ चिन्ता नहीं।

दूर्वामय पथ पर होकर शीघ्रता से आओ।

मेघाच्छन्न होते हुए आकाश को देखती हो, न?

नदी के उस पार से सारसों की पंक्तियाँ उठ-उठकर उड़ रही हैं और हवा के झोंके रह-रहकर मैदान में चल रहे हैं। घबड़ाये हुए पशुगण ग्राम की ओर अपने-अपने थान को भागे जा रहे हैं।

मेघाच्छन्न होते हुए आकाश को देखती हो, न ?

तुम व्यर्थ ही शृंगार के हेतु दीपक जला रही हो, वह वायु के वेग से झिलमिलाकर बार-बार बुझ-बुझ जाता है।

कौन देखता ही है कि तुमने अपनी आँखों को कज्जल-रंजित नहीं किया है अथवा नहीं, कारण कि तुम्हारी आँखें तो यों ही श्यामघनों से भी अधिक कृष्णवर्ण की हैं।

तुम व्यर्थ ही शृंगार के हेतु दीपक जला रही हो, वह तो बुझ-बुझ जाता है।

तुम जैसी भी हो, वैसी ही चली आओ। अपने शृंगार में देर न लगाओ।

यदि पुष्पहार अभी गुथा नहीं है तो कौन देखता है और यदि कंकण का मुख बन्द नहीं हुआ तो रहने भी दो।

आकाश मेघाच्छादित हो गया है—अब तो अत्यन्त विलम्ब हो गया है !

तुम जैसी भी हो, चली आओ। शृंगार में देर मत लगाओ !!

१२
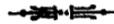
यदि तुम व्यस्ततापूर्वक शीघ्रता से ही घड़ा भरना चाहती हो तो आओ, मेरी पोखरी पर आओ।

उसका जल तुम्हारे चरणों को चारो ओर से आलिंगन करके अस्फुट शब्दो मे तुमसे अपना गुप्तभेद कहेगा।

आगामी वर्षा की स्निग्धछाया यहाँ बालुकारेणु पर पड़ रही है तथा वृक्षो की नील पंक्ति पर सघन घटा इस प्रकार झुकी हुई है, जैसे तुम्हारी भौहो पर तुम्हारी केशावलि।

मै तुम्हारी पदध्वनि से भली भाँति परिचित हूँ, कारण कि वह तो सदा ही हमारे हृदय में गुंजायमान रहती है।

आओ, यदि जल ही भरना है तो हमारी ही पोखरी पर आओ।

यदि आलस्यपूर्वक तुमको निर्द्वन्द्वता से पानी में घड़ा छोड़कर किनारे पर बैठने की ही इच्छा हो तो आओ, हमारी पोखरी पर आओ।

हमारी पोखरी की ढालू भूमि दूर्वादलो से हरी-भरी है तथा वहाँ पर वन्य पुष्पो की अत्यन्त भरमार है।

जिस प्रकार पक्षीगण अपने घोसलो से उड़ जाते है, उसी प्रकार यहाँ चिन्ता तुम्हारे नेत्रों से दूर भाग जायगी।

यहाँ तुम्हारी ओढ़नी तुम्हारे सर से खसककर तुम्हारे चरणों के समीप लोटने लगेगी।

यदि आलस्यपूर्वक ही बैठना है तो आओ, हमारी ही पोखरी पर आओ।

यदि तुमको अपनी अन्य क्रीड़ाएँ परित्याग करके जल में स्नान ही करना हो तो आओ, हमारी पोखरी पर आओ।

अपनी नीली ओढ़नी किनारे पर फेक दो। यहाँ की नील जल-राशि ही तुम्हारे शरीर को आच्छादित करके अपने अंचल मे तुमको छिपा लेगी।

जल की लहरे उछल-उछलकर तुम्हारी सुन्दर ग्रीवा का चुम्बन करने तथा तुम्हारे कानो में धीरे-धीरे अपना रहस्य कहने को आवेगी।

यदि तुमको जल मे स्नान ही करना है तो आओ, हमारी पोखरी पर आओ।

यदि तुमको उन्मत्त होकर प्राण विसर्जन करने के ही हेतु जल में कूदना हो तो आओ, हमारी पोखरी पर आओ।

पोखरी अत्यन्त शीतल तथा अथाह गहरी है।

स्वप्नरहित निद्रा की भाँति वह परम गम्भीर है।

इसके तल में रात्रि तथा दिवस सब एक भाँति हैं और संगीत निस्तब्धता के समान मूक है।

यदि डूबकर ही प्राण विसर्जन करना है तो आओ, हमारी ही पोखरी पर आओ।

१२
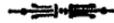
मैंने कुछ भी तो याचना नहीं की और केवल जंगल के किनारे वृक्ष के पीछे खड़ा रहा !

उषाकाल के नेत्र अब भी तन्द्रिल थे और वायुमंडल में ओस अब तक व्याप्त थी।

गीली घास की अलस सुगन्धि पृथ्वी पर फैले हुए हलके कोहरे में भरी हुई थी।

बटवृक्ष के नीचे तुम अपने सद्य—नवनीत—कोमल करों से गोदोहन कर रही थीं।

और मैं,—चुपचाप खड़ा था !

मैं एक शब्द भी तो न बोला। दृष्टि से ओझल झाड़ी में बैठी हुई केवल चिड़िया ही अपना मधुर तान अलापती रही।

आम का वृक्ष ग्राम्य-पथ पर बौरों की वृष्टि कर रहा था तथा मधुमक्खियाँ एक-एक करके गुंजारती हुई आ रही थीं।

शिवालय का तालाब की ओरवाला द्वार अभी ही खुला था और किसी पुजारी ने ध्वनि सहित स्तोत्र-पाठ आरम्भ कर दिया था।

अपनी गोद मे बरतन रक्खे हुए तुम गोदोहन कर रही थी।

और मै,—अपना खाली पात्र लिये खड़ा था।

मैं तुम्हारे पास भी तो नही आया !

मन्दिर के घंटे के शब्द से आकाश गुंजायमान हो उठा था।

सड़क पर हाँके जाते हुए पशुओ के खुरो से धूलि उड़ने लगी थी।

गर्दन तक जल से भरी झारियाँ कमर पर रक्खे स्त्रियाँ नदी से आने लगी थीं।

तुम्हारे हाथ की चूड़ियाँ बज रही थी और दूध के बरतन के मुख पर फेन झलकने लगा था।

धीरे-धीरे प्रभातकाल भी बीत गया, और मै,—तुम्हारे पास तक न आया !!

१४
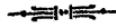
मध्याह्नकाल बीतने पर जिस समय बाँस की शाखाएँ वायु से खड़खड़ा रही थीं, मैं न जाने क्यों सड़क पर अग्रसर हो रहा था।

लम्बी-लम्बी भुजाएँ फैला कर छाया शीघ्रगामी प्रकाश के पैरों से चिमट रही थी।

कोयलें गाती-गाती थक-सी गई थीं।

मैं फिर भी सड़क के किनारे-किनारे न जाने क्यो अग्रसर हो रहा था!

जलाशय की समीपवर्ती कुटी एक अत्यन्त सघन वृक्ष से आच्छादित थी।

भीतर कोई अपने काम मे लगा हुआ था और हाथ की चूड़ियो की झंकार कुटी के भीतर उस कोने में संगीत-माधुर्य उत्पन्न कर रही थी।

मै न जाने क्यो उस कुटी के सम्मुख खड़ा हो गया।

यह पतला घुमावदार पथ कितने ही सरसो के खेतो तथा कितनी ही अमराइयो के बीच से होकर गया है।

यह पथ गाँव के मन्दिर की ओर भी गया है तथा घाट की ओर भी तो गया है।

मैं फिर भी न जाने क्यों इस झोपड़े ही के पास रुका !

वर्षों की बात है । वायु-संचरित फागुन के दिन थे तथा वसन्तऋतु का आलस्यजनक मनोहर अस्फुट शब्द वायुमंडल मे व्याप्त था । आम के बौर झड़-झड़कर पृथ्वी पर गिर रहे थे ।

जल हिलोरें लेकर घाट पर रक्खी हुई पीतल की झारी को चूमचूम लेता था ।

न जाने क्यो मुझे उस वायु संचरित फागुन के दिन का स्मरण हो रहा है !

परछाही गहरी होती जा रही है और पशुओ के झुंड अपने-अपने थानो की ओर लौट रहे है ।

निर्जन मैदान में प्रकाश भी फीका पड़ गया है तथा ग्रामीणजन घाट पर खड़े नौका आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

न जाने क्यो मैं धीरे-धीरे लौट पड़ा !!

१५
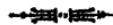
जिस प्रकार मृगमद्युक्त हरिण सघन वन में अपनी ही सुगन्धि से उन्मत्त होकर दौड़ता फिरता है, वैसी ही अवस्था मेरी भी है।

ज्येष्ठ-मास की रात्रि है और दक्षिण की पवन का संचार हो रहा है।

मैं मार्ग भूलकर भटकता फिरता हूँ। जो वस्तु मैं प्राप्त नहीं कर सकता वह तो मैं ढूँढ रहा हूँ और जो वस्तु मैं ढूँढ़ता नहीं हूँ, वह मुझे प्राप्त हो रही है!

मेरे हृदय के भीतर से मेरी कामनाओं का प्रतिबिम्ब निकलकर मेरे सामने नाच रहा है।

ज्योतिर्मय प्रतिबिम्ब नाचता-नाचता आगे ही बढ़ा जा रहा है।

मैं उसे कसके पकड़ना चाहता हूँ, परन्तु वह मुझसे बच-बचकर निकल जाता है और मुझे भटकाता फिर रहा है।

जो वस्तु मैं प्राप्त नहीं कर सकता वह तो मैं ढूँढ़ रहा हूँ और जो वस्तु मै ढूँढ़ता नहीं हूँ, वह मुझे प्राप्त हो रही है!!

१६

करो के परस्पर स्पर्शों तथा नेत्रो के सविलम्ब अव-लोकनों से हमारे हृदयों के इतिहास का प्रारम्भ होता है।

चैत्र-मास की चाँदनी रात्रि है। फूली हुई मेंहदी का मनोहर आमोद वायुमंडल में व्याप्त है। एक ओर तो हमारी अवहेलित वंशी पड़ी हुई है और दूसरी ओर तुम्हारी अर्धग्रथित पुष्पमाला रक्खी है।

हमारा और तुम्हारा यह प्रेम संगीत की भाँति सरल है!

केशर के रंग की तुम्हारी यह ओढ़नी हमारे नेत्रों को मदोन्मत्त किये देती है।

मेरे हेतु तुम्हारा बनाया हुआ यह जुही का हार मेरे हृदय को, श्लाघा की भाँति पुलकायमान कर रहा है।

देने और न देने का, दिखाने और फिर छिपा लेने का यह ऐसा खेल है जिसमें कुछ मात्रा तो मुसकानयुक्त सलज्जता की तथा कुछ अनावश्यक सुमधुर हिचकिचाहट की है।

हमारा और तुम्हारा यह प्रेम संगीत की भाँति सरल है!

इस में न तो वर्तमान के अतिरिक्त कोई रहस्य ही है

और न असम्भव के हेतु व्यर्थ का प्रयत्न। इस मोहिनी के पीछे किसी आशंका की छाया का आभास-मात्र भी नहीं है और न अन्धकार के गर्भ मे टटोलने की ही आवश्यकता है।

हमारा और तुम्हारा यह प्रेम संगीत की भाँति सरल है!

*

हम और तुम कभी परस्पर वार्तालाप छोड़कर अनन्त मौन धारण नहीं करते और न कभी आशा के परे वस्तुओं के ग्रहण के हेतु शून्य आकाश ही मे हाथ फैलाते है।

जो कुछ भी हम परस्पर देते और पाते हैं वही हमारे लिए यथेष्ट है।

हमने सुख को उस पराकाष्ठा तक नहीं निचोड़ डाला है कि हमें उसमें से विषाद की मदिरा निकल आने की आशंका हो।

हमारा और तुम्हारा यह प्रेम संगीत की भाँति सरल है!!

१७
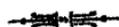
पीतवर्ण का पक्षी वृक्ष की डालियों पर बैठा मधुर गान करके हमारे हृदय को आनन्द से नचा-सा देता है।

हम दोनों के आनन्द का सबसे बड़ा कारण तो यह है कि हम दोनों एक ही ग्राम में रहते हैं।

उसकी पालतू भेड़ो का जोड़ा हमारी वाटिका के वृक्षों की शीतल छाया में चरने आता है।

यदि वे भटक कर हमारे जौ के खेत में भी घुस जाते हैं तो मैं उन्हें गोद मे उठा लेता हूँ।

खंजन हमारे गाँव का नाम है और अंजन हमारी नदी है!

हमारा नाम तो सब गाँववालों को ज्ञात है हाँ, उसका नाम रंजन है!!

हमारे और उसके घर के बीच में केवल एक ही तो खेत है।

जो मधुमक्खियाँ हमारे उद्यान में छत्ता लगाती हैं, वे ही तो उसके उद्यान में मधुसंकलन करती हैं।

उसके घाट की सीढ़ियो से बहाये हुए ही पुष्प तो जहाँ हम नहाते हैं, वहाँ जल में बहते हुए आते है।

उनके खेतों के सूखे कुसुमपुष्प डालियों में भर-भरकर हमारी ही हाट मे तो बिकने को आते हैं ।

खंजन हमारे गाँव का नाम है और रंजन हमारी नदी है !

हमारा नाम तो सब गाँववालो को ज्ञात है हाँ, उसका नाम रंजन है !!

उसके घर की ओर घूमकर जानेवाला पथ वसन्तकाल में आम के बौरो के आमोद से सुगन्धित रहता है ।

जब उसके खेतो में तीसी पककर तैयार होती है, उस समय हमारे भी खेतो में पटसन फूलता है ।

जो नक्षत्रावली उसके घर पर प्रकाश डालती है, तो हमारी ओर भी चमकती है ।

जो वृष्टि उसके तड़ागो को भर देती है, वही हमारे कदम्ब-वन को भी आनन्दित करती है ।

खंजन हमारे गाँव का नाम है और रंजन हमारी नदी है !

हमारा नाम तो सब गाँववालो को ज्ञात है हाँ, उसका नाम रंजन है !!

१८

जब दोनो बहिनें पानी भरने को जाती हैं तो वे इस स्थान पर आकर मुस्कराने लगती है।

जब भी वे पानी भरने जाती है, तभी वृक्षों की आड़ मे यहाँ किसी का छिपकर खड़े रहना उन्हे अवश्य ही ज्ञात हो गया होगा!

जब दोनो बहिने इस स्थान से होकर निकलती हैं तो वे अत्यन्त धीरे-धीरे बोलने लगती हैं।

उनके जल भरने को जाते समय वृक्षो की आड़ में सदैव ही किसी के छिपकर खड़े रहने का गुप्तभेद उन्हे अवश्य ही ज्ञात हो गया होगा।

जब वे इस स्थान पर पहुँचती हैं तब उनकी झारियाँ अकस्मात् झोंके खाकर हिल जाती है और पानी छलक उठता है।

उन्हें अवश्य ही ज्ञात हो गया होगा कि उनके जल भरने जाने के समय वृक्षो की आड़ में छिपे रहनेवाले व्यक्ति का हृदय धड़क रहा है!

जब दोनों बहिनें इस स्थान पर पहुँचती हैं तो एक दूसरे की ओर रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखकर हँसने लगती हैं।

उनके इठलाकर चंचलतापूर्वक चलनेवाले पैरों की चाल में एक प्रकार की कुछ ऐसी खिलखिलाहट है जिससे कि उस व्यक्ति का मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है जो सदैव उनके जल भरने जाने के समय वृक्षों की ओट में छिपकर खड़ा रहता है !!

१६
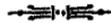
कमर पर भरी हुई झारी रखे हुए तुम तो नदी के किनारे-किनारे जा रही थीं !

फिर तुमने शीघ्रता से मुड़ कर अपने हिलते हुए घूँघट के भीतर से हमारी ओर क्यो देखा ?

चंचल बायु का एक झँकोरा आकर जिस प्रकार लहराते हुए जल को कम्पायमान करके सघन दुकूलो की ओर निकल जाता है, ठीक वैसी ही अवस्था तुम्हारे घूँघट के भीतर की उस चितवन ने हमारी कर दी !

आलोकरहित गृह में जिस प्रकार संध्या समय कोई पक्षी घुसकर, चारो ओर, इस खुली खिड़की से उस खुली खिड़की की ओर उड़ता फिरता है और फिर अन्धकार मे विलीन हो जाता है, ठीक उसी प्रकार, तुम्हारा वह कटाक्ष मुझको अनुभूत हुआ था !

तुम पर्वत-श्रेणी के पृष्ठभाग में अन्तर्हित किसी नक्षत्र की भाँति हो और मैं मार्ग के पथिक की भाँति हूँ !

परन्तु, जब तुम कमर पर भरी हुई झारी रखे नदी के किनारे-किनारे जा रही थी, तब ज़रा ठिठककर और मेरे मुख की ओर देखकर तुमने अपने घूँघट की ओट से कटाक्ष क्यों किया था?

२०

वह नित्यप्रति आता है और फिर लौट जाता है !

जाओ सखी ! हमारे जूड़े का यह पुष्प उसे दे तो आओ ।

यदि वह इस पुष्प के प्रेषक का पता पूछे तो मैं बिनती करती हूँ कि उसे कुछ बताना मत—कारण कि वह तो बस, आकर और फिर लौट जाता है !

वृक्ष के नीचे वहाँ वह पृथ्वी पर बैठा करता है ।

सखी ! उस स्थान पर फूलों तथा पत्तियों का एक आसन तो बना आओ ।

वह अपने हृदय की बात कभी कहता नहीं, बस, आता है और फिर लौट जाता है !!

२१
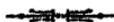
वह युवा बटोही प्रातःकाल से हमारे ही द्वार पर क्यों आ बैठा ?

जब मैं बाहर-भीतर आती-जाती हूँ तब मुझे उसी के पास से होकर निकलना पड़ता है और मेरी आँखे उसके मुख की ओर आकृष्ट हुए बिना रहतीं ही नहीं ।

मैं यह निश्चय ही नहीं कर पाती कि मैं उससे भाषण करूँ अथवा चुपकी रहूँ । आह ! वह मेरे ही द्वार पर क्यों आ बैठा ?

वर्षाकाल की मेघावृत्त रात्रियाँ अत्यन्त अँधेरी होती हैं ।

पतझड़ के दिनों में आकाश हलके नीलवर्ण का होता है । वसन्तऋतु के दिन दक्षिणी पवन के संचार के कारण अविश्रान्त रहते हैं ।

वह नित्य नई तानों के साथ अपनी रागमाला अलापा करता है ।

मैं अपने गृह-कार्य की ओर से उदासीन होकर उसी की ओर आकृष्ट हो जाती हूँ तथा मेरे नेत्र वाष्पाकुल हो जाते हैं ।

आह ! वह मेरे ही द्वार पर क्यों आ बैठा ?

२२

जब वह चंचलतापूर्वक मेरे समीप से होकर निकली तब उसके अंचल का स्पर्श मेरे शरीर से हो गया।

किसी अज्ञात तथा निर्वासित हृदय-द्वीप से अकस्मात् वसन्त-वायु का एक उष्ण झोंका मानों उसी समय आकर मुझे लगा।

केवल एक त्वरित तथा कम्पायमान स्पर्श-मात्र ही हमारे शरीर से हुआ था तथा हवा मे उड़ती हुई किसी फूल की टूटी पँखुड़ी की भाँति ही वह क्षण-मात्र में विलीन भी हो गया था।

परन्तु उसके शरीर के एक गम्भीर निःश्वास तथा उसके हृदय की किंचित् अस्फुट वार्ता की भाँति ही उस स्पर्श का मेरे हृदय पर प्रभाव पड़ा।

२३
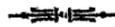
तुम वहाँ बैठी अपने कंकणों को केवल अपनी आलस्य-क्रीड़ा में ही क्यों बजाया करती हो ?

झारी को जल से भर लो। अब घर चलने का समय हुआ।

तुम वहाँ बैठी हाथों से जल को हिलाती हुई मार्ग पर चंचलदृष्टि निक्षेपपूर्वक केवल आलस्य-क्रीड़ा में ही किसी को क्यों ढूँढ़-सी रही हो ?

झारी को जल से भर लो और घर चलो।

प्रभातकाल व्यतीत हो रहा है और नील जलराशि बहती हुई चली जा रही है।

जल के हिलोरे भी तो आलस्य-क्रीड़ा मे ही परस्पर हँस रहे है तथा अस्फुट शब्द कर रहे है !

क्षितिज के समीप उस उच्चस्थली पर भटकती हुई मेघमंडली संकुलित हुई है।

वे भी किंचित् रुककर केवल आलस्य-क्रीड़ा में ही तो तुम्हारे मुख का अवलोकन करके मुस्कराती हैं।

झारी को जल से भर लो और घर चलो।

२४
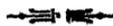
सखी ! अपने हृदय का भेद छिपा के न रखो।

मुझसे, केवल मुझसे ही, वह बात गुप्तरूप से कह डालो।

मधुरस्मिते ! धीरे से वह बात मुझसे कह क्यों न दो, केवल मेरा हृदय ही उसे सुनेगा और मेरे कानों तक को भी तो उसकी खबर न हो पावेगी।

रात्रि भीन गई है। घर सुनसान हो गया है। पक्षियो के घोंसले तक निद्रा में निमग्न हैं।

रुकते हुए अश्रुओ, अस्फुट मुस्कानो, सुमधुरा लज्जा तथा दुःख के साथ मुझे अपने हृदय का वह गुप्तभेद बता न दो, सखी !

२५

"युवक ! हमारे पास आओ और सच-सच बता दो कि तुम्हारे इन नेत्रयुग्मों में उन्माद क्यों भरा हुआ है ?"

"मुझे ज्ञात नही है कि मैं कौन-सी विषैली मदिरा पी गया हूँ जिसके कारण मेरे नेत्रो में उन्माद छा गया है।"

"छि:, कैसी लज्जा की बात है !"

"वाह, कुछ लोग बुद्धिमान् होते है तो कुछ मूर्ख भी होते हैं। कितने सतर्क तथा कितने असावधान होते हैं। कुछ नेत्र हँसनेवाले तथा कुछ रोनेवाले भी तो होते हैं। मेरे नेत्रो में उन्माद ही सही !"

"युवक ! वहाँ इस प्रकार चुपचाप वृक्ष की छाया में क्यों खड़े हो ?"

"मेरे पैर मेरे हृदय के आभार से शिथिल हो गये हैं। इसी कारण मैं यहाँ छाया में शान्त खड़ा हूँ।"

"धिक्-धिक्, कैसी लज्जा की बात है !"

"वाह, कुछ लोग अपने पथ पर अग्रसर होते रहते है, कुछ रुक जाते हैं। कुछ स्वच्छन्द हैं तथा कुछ बन्दी है। मेरे पैर मेरे हृदय के आभार से ही तो शिथिल हो रहे हैं ?"

२६

"जो कुछ भी आप इच्छापूर्वक अपने हाथो से दे देती हैं, मैं वही ले लेता हूँ और उससे अधिक तो नही माँगता ?"

"जी, हाँ, मैं आपको खूब जानती हूँ, विनम्र योगीजी ! आप तो हमारा सर्वस्व ही माँग लेते है।"

"यदि मुझे एक तुच्छ पुष्प भी आपसे मिल जायगा तो मैं उसी को हृदय पर धारण किये रहूँगा।"

"परन्तु, यदि उसमे काँटे हो, तो ?"

"मैं उन्हें भी सहन करूँगा।"

"जी, हाँ, लजीले योगीजी ! मैं आपको खूब जानती हूँ। आप तो सर्वस्व ही माँग लेते है।"

"यदि आप एक बेर भी मेरी ओर प्रेम-दृष्टि उठाकर देख लें तो मेरा सर्वस्व जीवन तथा परलोक दोनो अत्यन्त मधुर हो उठें।"

"परन्तु, यदि हम केवल क्रूर चितवन से देखे, तो ?"

"तो मैं सदैव ही उससे अपना हृदय छिदवाया करूँ।"

"जी, हाँ, विनीत योगीजी ! मैं आपसे खूब परिचित हूँ। आप तो सर्वस्व ही माँगे लेते है।"

२७

"यद्यपि केवल दुःख ही क्यों न मिले, परन्तु प्रेम में विश्वास रखो । अपने हृदय-प्रकोष्ठ को बन्द न करो।"

"नहीं मित्र, नहीं ! तुम्हारी बातें अत्यन्त गूढ़ हैं। मैं उन्हें समझने में असमर्थ हूँ।"

"प्रिये ! हृदय अश्रु-बिन्दुओं तथा संगीत के सहित दी जाने की वस्तु है।"

"नहीं मित्र, नहीं ! तुम्हारी बातें अत्यन्त गूढ़ हैं। मैं उन्हें समझने में असमर्थ हूँ।"

"सुख तो तुहिनबिन्दु की भाँति क्षण-भंगुर है तथा हँसते-हँसते ही विलीन हो जाता है, परन्तु दुःख सशक्त तथा स्थायी है। अतएव तुम अपने नेत्रों में सविषाद प्रेम को ही जागृत करो।"

"नहीं मित्र, नहीं ! तुम्हारी बाते अत्यन्त गूढ़ हैं। मै उन्हें नहीं समझ सकती।"

"कमलपुष्प सूर्य के सन्मुख प्रफुल्लित हो उठता है और

अपना सर्वस्व निछावर कर देता है। शरत्कालीन अनन्त कुहासे मे तो वह कभी नहीं खिलता।"

"नहीं मित्र, नहीं! तुम्हारी बातें अत्यन्त गूढ़ हैं। मैं उन्हे समझने में नितान्त असमर्थ हूँ।"

२८

तुम्हारे जिज्ञासु नेत्र विषादयुक्त हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्र के तल में भी पहुँच जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे नेत्र मेरा आशय जानना चाहते हैं।

मैंने अपना आद्योपान्त जीवन तुम्हारे नेत्रों के सन्मुख सम्पूर्णतया खोलकर रख दिया है और कुछ भी गुप्त अथवा छिपाकर नहीं रखा है। कदाचित् इसी कारण तुम मुझे नहीं पहिचानती हो !!

आह ! यदि मेरा हृदय एक रत्न होता तो मैं उसके शतशः खंड करके उनको तुम्हारे गले में पहिनने के हेतु पिरो देता !

आह ! यदि यह एक सुन्दर, सुगन्धित तथा छोटा-सा पुष्प ही होता तो मैं उसे डाली से तोड़कर तुम्हारे केशों में लगा देता !

परन्तु, यह तो हृदय है, प्राणेश्वरी ! इसकी कहाँ तो परिधि है तथा कहाँ इसकी थाह है ?

यद्यपि तुमको इसके साम्राज्य के विस्तार का ज्ञान नहीं है तो भी तो तुम इसकी रानी ही हो !

यदि हृदय सुख की एक घड़ी ही होता तो भी यह सहज मुस्कान के रूप में प्रफुल्लित होता और तुम इसको देखकर क्षणेक में ही पहिचान लेती !

यदि यह एक दारुण पीड़ा भी होता तो पिघलकर अविकल अश्रुधारा में परिणत हो जाता और बिना शब्दों का आश्रय लिये ही अपना आन्तरिक रहस्योद्घाटन कर देता।

परन्तु प्रिये! यह प्रेम है।

इसका हर्ष तथा विषाद दोनों ही असीम है और इसकी सम्पत्ति तथा कामनाएँ अनन्त हैं।

यह तुम्हारे ही जीवन की भाँति तुमसे निकट है, परन्तु तो भी तुम इसे पूर्णतया नहीं जान सकतीं!!

२६

प्यारे, मुझसे बोलो ! मुझे शब्दों में व्यक्त करके बताओ कि तुमने अभी क्या गाया है ।

रात्रि अन्धकारमयी है। नक्षत्रराशि मेघो में छिपी हुई है। वायु वृक्षो के पत्तो के बीच सायँ-सायँ करती हुई बह रही है।

मैं अपने बाल खोल दूँगी। मेरा नीला वस्त्र मेरे शरीर से रात्रि की भाँति चिपका रहेगा। मै तुम्हारे सिर को अपने हृदय से लगा लूँगी और मैं ऐसे मधुर एकान्तकाल में तुम्हारे हृदय के निकट अस्फुट शब्द करूँगी। अपने नेत्रों को मूँदकर केवल तुम्हारी बातें सुनूँगी तथा तुम्हारे मुखमंडल की ओर देखूँगी भी नही ।

जब तुम्हारी बात समाप्त हो लेगी तब हम तुम दोनो शान्त तथा मौन बैठे रहेगे। केवल वृक्ष ही उस निबिड़ अन्धकार में शब्द करेंगे ।

रात्रि क्षीण हो जायगी तथा दिवस का प्रारंभ होगा। हम दोनो एक दूसरे के नेत्रों की ओर देखने के उपरान्त अपने-अपने मार्ग पर चल देंगे ।

प्राणवल्लभ ! मुझसे बोलो, मुझे शब्दो में व्यक्त करके बताओ कि तुमने अभी, अभी, क्या गाया है ।

३०

तू मेरे स्वप्नाकाश में उड़ती हुई सायंकालीन मेघमाला के समान है।

मैं सदैव अपनी प्रेम-कामनाओं द्वारा तेरे नाना प्रकार के चित्र अंकित किया करता हूँ।

तू मेरी है, सर्वथा मेरी है, मेरे अनन्त स्वप्न की अधिवासिनी!

मेरे हृदय की वासनाओं की आभा से रंजित होकर तेरी एड़ियाँ अरुणारी है, मेरे सायंसंगीत की संकलनकारी!

मेरे विषाद की मदिरा के स्वाद से तेरे अधरों में सुतीक्ष्ण माधुर्य आ गया है।

तू मेरी है, सर्वथा मेरी है, मेरे एकाकी स्वप्नों की अधिवासिनी!

अपने उत्कट प्रेम की छाया से मैंने तेरे नेत्र कजरारे कर दिये हैं, मेरी दृष्टि में गड़ी रहनेवाली!

प्रिये! मैंने अपने संगीतजाल में तुझे पकड़कर बाँध रखा है।

तू मेरी है, सर्वथा मेरी ही है, मेरे अमर स्वप्नों की अधिवासिनी!

३१
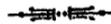
मेरे हृदय-वन्यपक्षी को तुम्हारे नेत्रों में उसका आकाश मिल गया है।

तुम्हारे नेत्र-युग्म तो मानों प्रभात के झूले हैं, नक्षत्रों के साम्राज्य है !

उनके गर्भ में मेरे गीत निमग्न हो जाते है।

अहा ! मुझको भी अपने उसी नेत्राकाश में, उसके एकान्त विस्तार में उड़ने दो !!

अहा ! मुझको भी तनिक उस आकाश में व्याप्त मेघ-मंडली को चीरकर उसके सुन्दर प्रकाश में अपने पंख फैला लेने दो !!!

३२

कहो कि क्या यह सब सच है, मेरे प्रेमिक ! कहो, कहो क्या यह सच है ?

मेरे इन नेत्रो मे जब सौदामिनी की ज्योति उत्पन्न होती है, क्या उस समय आपके हृदय के सघन मेघ गम्भीर गर्जन-पूर्वक प्रत्युत्तर देते हैं ?

क्या सचमुच मेरे अधर नव-जागृत-प्रणय की अर्ध-स्फुटित कलिका की भाँति सुमधुर है ?

क्या अतीत ग्रीष्मऋतु की स्मृति मेरे अंग-प्रत्यंगो मे वास्तव में व्याप्त है ?

क्या मेरे चलने के समय मेरे पदो के स्पर्श मात्र से ही पृथ्वी में से वीणा की भाँति झंकारयुक्त सांगीतिक मूर्च्छना उत्पन्न होती है ?

तो क्या यह सच है कि जब मै बाहर निकलती हूँ तो रात्रि के नेत्रो से तुषाररूपी अश्रुओं की वर्षा होने लगती है, और क्या प्रभात का प्रकाश मेरे शरीर का आलिंगन करके सचमुच ही परमाह्लादित होता है ?

क्या यह सच है, कहिए, कहिए क्या यह सच है कि

आपका प्रेम अकेला ही, युगोंपर्यन्त, देश-देशान्तर, मेरी खोज में भटकता फिरा था ?

और, जब अन्त में मैं आपको प्राप्त हुई तब क्या आपकी चिरकालीन अभिलाषा मेरे मधुर भाषणों, मेरे नेत्र-युगलों, मेरे अधरों तथा मेरे केशपाशों द्वारा परम शान्ति को प्राप्त हुई थी ?

तो क्या यह सच है कि अनादि का रहस्य मेरे इस छोटे से ललाट पर ही लिखा हुआ है ?

मुझे बताओ, मेरे प्रेमिक, क्या यह सब कुछ सच है ?
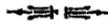
जब मेरा हृदय आनन्द के स्रोत में बह चले तो मेरे उस भयावह आत्मविसर्जन पर कहीं हँसना मत।

जब मै अपने सिंहासन पर बैठकर तुम पर निरंकुश प्रेम द्वारा शासन करूँ अथवा जब मैं देवियों की भाँति तुम्हारे ऊपर अपनी अनुकम्पा प्रकट करूँ तो मेरे उस गर्व को भी सहन कर लेना हृदयेश्वर, तथा मेरे हर्ष को क्षमा करना।

३४

प्राणेश्वर ! बिना मेरी अनुमति लिये तुम कही चले मत जाना ।

मैं रात्रि-भर तो तुम्हारी प्रतीक्षा मे बैठी रही हूँ और अब मेरे नेत्र निद्रा से भारी पड़ गए है ।

मुझे यह भय है कि कही मैं सोते-ही-सोते तुम्हें खो न बैठूँ ।

प्यारे ! बिना मेरी अनुमति लिये तुम कहीं चले न जाना ।

मै चौककर उठ बैठी हूँ और तुम्हारा स्पर्श करने के हेतु अपने हाथ फैलाती हूँ । मैने हृदय मे सोचा, "क्या यह स्वप्न है ?"

आह ! यदि कही मैं अपने हृदयपाश से तुम्हारे चरणो को अवगुंठित करके अपने वक्षःस्थल से बाँधकर रख सकती !!

हृदयेश्वर ! कही तुम बिना मेरी अनुमति लिये चले मत जाना ।

३५

तुम मुझे इस हेतु भुलावा दे रही हो कि कहीं मैं तुम्हारे वास्तविक भाव सुगमता से न जान जाऊँ।

अपने अश्रु को छिपाने के लिए तुम अपनी हास्य-विद्युत्प्रभा द्वारा मुझे अन्धा बना देती हो।

मैं तुम्हारी चतुरता खूब जानता हूँ।

जो बात तुम वास्तव में कहना चाहती हो, वही तुम कदापि न कहोगी।

इस भय से कि कहीं मैं तुम्हारा आदर न करूँ, तुम सहस्त्रशः रीतियों से मुझसे दूर बचती हो।

कहीं मैं तुमको साधारण जनसमूह में न समझ लूँ, इस हेतु तुम उससे परे हटकर खड़ी होती हो।

मैं तुम्हारा कौशल खूब जानता हूँ।

जिस मार्ग का अनुसरण करने की तुम्हारी अत्यन्त इच्छा है, उसी पर तुम कदापि न चलोगी।

तुम्हारे स्वत्व औरों से बहुत अधिक हैं, इसी हेतु तुम शान्त हो।

क्रीड़ागत अवहेलनापूर्वक तुम मेरे उपहार अस्वीकृत कर देती हो।

मैं तुम्हारी पटुता खूब जानता हूँ।

जो वस्तु लेने की तुम्हारी अत्यन्त इच्छा है, वही तुम कभी न लोगी।

३६
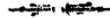
उसने धीरे से कहा, "मेरी प्यारी, ज़रा आँखें तो खोलो।"
मैंने तुरन्त उसे झिड़ककर कहा, "जाओ जी, हटो यहाँ से।" परन्तु वह तनिक हिला भी नही।

उसने मेरे सम्मुख खड़े होकर मेरे दोनो हाथ पकड़ लिये। मैंने कहा, "छोड़ दो मुझे।" परन्तु वह तब भी न गया।

वह अपना मुख मेरे कानो के समीप ले आया। मैंने उसकी ओर देखकर कहा, "वाह री तुम्हारी निर्लज्जता!" परन्तु वह टसका भी नही।

उसके ओष्ठो ने मेरे कपोलो का स्पर्श किया। मै सिहर उठी और बोली, "तुम तो बड़े ढीठ हो जी!" परन्तु वह तनिक लज्जित भी न हुआ।

उसने मेरे जूड़े मे एक पुष्प लगा दिया। मैंने कहा, "यह सब व्यर्थ की बाते हैं।" परन्तु वह इससे भी निरुत्साहित न हुआ।

उसने मेरे गले का गजरा उतार लिया और चला गया। अब मै रो-रोकर अपने हृदय से पूछती हूँ, "हाय! वह फिर लौटकर आता क्यो नहीं?"

३७

शुभ्रे ! क्या तुम यह अपना सद्य-पुष्प-निर्मित हार मेरे गले में पहिनाओगी ?

परन्तु, तुमको यह अच्छी तरह ज्ञात होना चाहिए कि मैंने अब तक केवल एक ही माला बनाई है और वह भी अनेक के लिए है। मेरी माला उनके हेतु है जिनका अस्पष्ट दर्शन क्षणमात्र को ही हुआ करता है, जो अगम्य स्थलों में रहते हैं तथा जो कविगणों की गीतो के अधिवासी है।

तुमने अपने हृदय के बदले में मेरा हृदय माँगने में अब बड़ा ही विलम्ब कर दिया है।

हाँ, एक ऐसा भी समय था जब मेरा हृदय सम्पुट एक कलिका की भाँति था। तब उसकी सारी सुगन्धि उसी की अन्तस्थली में बन्द थी।

परन्तु अब—अब तो उसकी सुगन्धि दूर-दूर तक व्याप्त हो गई है।

उस सुगन्धि को फिर संकलित करके हृदय में बन्द करने का मन्त्र भला किसे ज्ञात है ?

मेरा हृदय अब अपना नही रह गया कि मैं उसे किसी एक को अर्पण कर दूँ। अब तो यह बहुतेरों को दिया जा चुका है!!

३८

प्राणाधिके ! एक समय तुम्हारे इस कवि ने एक महा-काव्य की अवतरणिका अपने मस्तिष्क मे की ।

परन्तु खेद ! मेरी असावधानी से वह महाकाव्य तुम्हारे शब्दायमान कंकणो की ठेस से खंड-खड हो गया !

टूटने पर वह गायनो के छोटे-छोटे टुकड़ो मे परिवर्तित हो गया और तुम्हारे चरणो के पास गिर पड़ा ।

उस महाकाव्य के उन अतीत युद्धो के आख्यान हँसती हुई लहरो द्वारा इधर-उधर फेंके जाकर तथा अश्रुसिंचित होकर डूब गये ।

हृदयेश्वरि ! मेरी इस क्षति की पूर्ति तुमको अवश्य ही कर देनी चाहिए ।

यदि उस महाकाव्य द्वारा मृत्यु के अनन्तर अमरकीर्ति लाभ करने का मेरा अधिकार नष्ट हो गया है तो प्रिये ! कम-से-कम मुझे जीवनकाल में ही अमरत्व प्रदान कर दो ।

फिर, न तो मैं अपनी हानि का ही दुःख करूँगा और न तुम पर ही कभी दोषारोपण करूँगा !
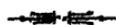
३६

मैं सारा प्रभात का समय एक पुष्पहार गूँथने की चेष्टा में व्यय करता हूँ, परन्तु फूल खसक-खसककर गिर जाते हैं।

तुम वहाँ छिपकर बैठी हुई अपने भेदी नेत्रों के कोनों से मेरी ओर निरन्तर देख रही हो न?

गुप्त षड्यन्त्र रचनेवाले अपने उन नेत्रों से ही क्यों न पूछो कि इसमें किसका दोष था!

मैं एक गीत गाने का प्रयत्न करता हूँ, परन्तु मेरी वह चेष्टा भी विफल होती है।

वह देखो,एक छिपी हुई मुस्कान तुम्हारे अधरों पर झलक रही है! मेरी असफलता का कारण उसी से क्यों न पूछो!

अपने स्मयमान ओष्ठों से शपथपूर्वक पूछ क्यों न लो कि कमलगर्भ की मदमत्त मक्खी की भाँति किस प्रकार मेरे स्वर नीरवता मे लीन हो गये थे!

सन्ध्या का समय है और पुष्पदलों के संकुचित होने का समय आ गया है।

माली

मुझे अपने पार्श्व-देश मे बैठने की आज्ञा दो और मेरे इन ओष्ठों को अनुमति प्रदान कर दो कि वे अपना वह कार्य करे जो केवल नक्षत्रों के धुँधले प्रकाश में ही निस्तब्धता-पूर्वक सम्पादित होता है।

४०

जब मै तुमसे बिदा माँगने आता हूँ तो तुम्हारे नेत्रों मे एक अविश्वासपूर्ण मुस्कान झलकने लगती है।

मै इतनी बार बिदा माँग चुका हूँ कि तुमको यह धारणा हो गई है कि मै शीघ्र ही फिर लौट आऊँगा।

और, जो सच पूछो तो मुझे भी कुछ-कुछ ऐसा ही सन्देह हो रहा है।

कारण कि वसन्तऋतु भी तो बारम्बार लौटता है, पूर्ण चन्द्र भी तो बिदा ले जाकर भी फिर आता है, पुष्प भी प्रति वर्ष लौट-लौट आकर अपनी डालियो पर सलज्ज-अरुणाता से रञ्जित हो फूलते हैं और यह भी बहुत सम्भव है कि मै भी फिर लौट आने के ही हेतु तुमसे बिदा हो रहा हूँ।

परन्तु कृपया इस मिथ्या भ्रम को क्षण-भर बना ही रहने दो ; इसको कठोर शीघ्रता से दूर मत करो।

जब मैं यह कहूँ कि मै तुमसे सदैव के लिए बिछुड़ता हूँ तो तुम इसको ही सत्य मान लो और अपने नेत्रों की श्याम पलको को क्षण-मात्र के लिए वाष्पाकुल हो जाने दो।

और—जब मै वास्तव में लौटकर आ ही जाऊँ तब चाहे जितनी व्यंग्ययुक्त नटखटता से हँस लेना !!

४१

मैं तुमसे कुछ अत्यन्त गम्भीर शब्द कहना चाहता हूँ, परन्तु इस भय से कि तुम हँसोगी मैं कुछ नहीं कह पाता।

इसी लिए मैं स्वयं ही अपने ऊपर हँसता हूँ तथा अपनी हँसी से ही अपना रहस्य छिन्न-भिन्न कर देता हूँ।

मैं अपनी विषादजनिता पीड़ा का स्वयं ही तिरस्कार करता हूँ, इस भय से, कि कहीं तुम वैसा न करो।

मुझे तुमसे कुछ अत्यन्त सच्चे शब्द कहने हैं, परन्तु मेरा साहस नहीं होता, कि कहीं तुमको उन पर अविश्वास न हो।

इसी हेतु मैं उनको असत्य के छद्मरूप में प्रकट करता हूँ और अपने तात्पर्य से विपरीत बातें किया करता हूँ।

मैं अपनी मानसिक पीड़ा का इस भय से तिरस्कार करता हूँ कि कहीं तुम वैसा न करो।

मैं यथासामर्थ्य तुम्हारे प्रति अत्यन्त बहुमूल्य तथा आदर-सूचक शब्दों का प्रयोग करना चाहता हूँ, परन्तु मेरा साहस नहीं पड़ता कि कहीं तुम भी वैसे ही शब्द मुझसे न कह पड़ो।

मैं इसी हेतु तुम्हारे प्रति कटु शब्दों का प्रयोग करके अपनी हृदयहीनता पर गर्व करता हूँ।

इस भय से कि कदाचित् तुमको पीड़ा का अनुभव ही न हो, मैं तुमको पीड़ित करता हूँ।

मैं तुम्हारे निकट अत्यन्त मौनभाव से बैठना चाहता हूँ, पर साहस नही पड़ता कि कहीं मेरा कलेजा मुँह को न आ जाय।

इसी हेतु मैं मूर्खों की भाँति बकवाद करके शब्दाडम्बर द्वारा अपने हृदय को छिपा रखता हूँ।

मैं अपने दुःख के साथ स्वयं इस भय से अपव्यवहार करता हूँ कि कहीं तुम ऐसा न करो।

मैं तुम्हारे पार्श्व से उठकर चला जाना चाहता हूँ, परन्तु साहस नहीं पड़ता कि कहीं मेरी भीरुता तुम पर प्रकट न हो जाय।

इसी लिये मैं अभिमानपूर्वक तथा उन्नत मस्तक होकर निश्चिन्ततापूर्वक तुम्हारे सम्मुख आता हूँ।

और, तुम्हारे कटाक्षों से निरन्तर आहत होते रहने के कारण मेरी पीड़ा सर्वदा ही उत्कट रहती है।

४२

उत्कृष्ट रूप से मदमत्त, अरे बावले !

यदि तू ठोकर मारकर अपने समस्त द्वार खोलकर फेंक दे और सर्वसाधारण के सम्मुख मूर्खता करे ;

यदि तू रात्रि के समय अपना धनकोष खोलकर बैठने की धृष्टता करे तथा बुद्धिमत्ता को अँगूठा दिखाकर उसका तिरस्कार करे ;

यदि तू विचित्र पथों पर भटकता फिरे तथा निरर्थक वस्तुओं के साथ खेल करे ;

बुद्धिमानी तथा सतर्कता की अवहेलना करे ;

यदि तू आँधी के सन्मुख अपनी नौका का पाल खोल दे तथा उसका पतवार तोड़ फेंके ;

तब मैं तेरा साथ दूँ, सखे ! तथा मदमत्त होकर मैं भी दुर्गति को प्राप्त हो जाऊँ ।

मैं अपनी रात्रि तथा दिन सदाचारी तथा बुद्धिमान् पड़ोसियों के साथ रहकर नष्ट कर चुका हूँ ।

पाण्डित्य के आधिक्य ने मेरे बाल श्वेत कर दिये हैं तथा निरन्तर प्रतीक्षा करने के कारण मेरी दृष्टि धुँधली पड़ गई है।

वर्षों से मैने नाना प्रकार की वस्तुओ के टुकड़े बीन-बीनकर इकट्ठे कर रखे है।

उनको चूर-चूर कर दो! उन पर नाच-नाचकर उनको कुचल दो!! उनको चारो ओर फेंक दो!!!

कारण कि, मै जानता हूँ कि मदमत्त होकर दुर्गति को प्राप्त हो जाने मे ही बुद्धिमत्ता की चरम सीमा है।

टेढ़े-मेढ़े धर्माचारो को दूर कर दो तथा मुझे पूर्णरूप से पथभ्रष्ट हो जाने दो।

उत्कट उन्माद के एक झोके को मेरे मस्तिष्क में आकर मुझे बहा ले जाने दो।

यह संसार चतुर, प्रयोजनीय, कार्यपरायण तथा योग्य पुरुषो से भरा तो पड़ा है।

इसमे बहुत-से तो सरलतापूर्वक प्रथम श्रेणी में गिने जा सकते है तथा कितने ही भली भाँति द्वितीय श्रेणी में रक्खे जाने योग्य हैं।

उनको ही सुखी तथा उन्नतिशील होने दो और कृपया मुझे,—मूर्ख तथा असफल ही रहने दो!

कारण कि, मैं यह जानता हूँ कि सब कार्यों का अन्तिम उद्‌देश्य मदमत्त होकर दुर्गति को प्राप्त हो जाना ही है।

मैं इसी क्षण सम्भ्रान्त पुरुषों की श्रेणी के अपने सब अधिकार परित्याग करने की शपथ करता हूँ।

मैं अपने पांडित्य के अभिमान तथा अपने विवेक को भी तिलाञ्जुलि देता हूँ।

मैं अपनी स्मृति का पात्र तोड़ डालूँगा तथा अपने अश्रुओं का अन्तिम बिन्दु भी पोंछकर फेंक दूँगा।

झलझलाती हुई लाल रंग की मदिरा के फेन से मैं अपनी हँसी को परिष्कृत तथा अति शुभ्र बनाऊँगा।

अपनी सभ्यता तथा सदाचार के चिह्न भी मैं इसी उपलक्ष में फाड़कर दूर फेंक दूँगा।

मै पवित्र व्रत धारण करता हूँ कि मैं सदा नितान्त निरुपयोगी ही बना रहूँगा तथा मदमत्त होकर अधोगति को प्राप्त हो जाऊँगा।

४३
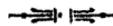
नहीं, मित्रो ! नहीं, तुम चाहे जितना भी कहो, मैं कदापि तपस्वी न बनूँगा ।

यदि वह मेरे साथ तपस्याव्रत धारण नहीं करेगी तो मैं कभी भी तपस्वी न बनूँगा ।

यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि मुझे सघन छायायुक्त आश्रय तथा एक तपस्या की संगिनी नहीं मिलेगी तो मैं कभी भी तपस्वी न बनूँगा ।

नहीं, मित्रो ! नहीं, यदि वन की उस प्रतिध्वनियुक्त सघन छाया में मुझे किसी की प्रफुल्लित हास्य-ध्वनि न सुनाई पड़ेगी, यदि किसी की केसरिया साड़ी का अंचल वहाँ हवा में पल्लवित न होगा तथा यदि सुमधुर मन्द शब्दों द्वारा वहाँ की निस्तब्धता और भी अधिक घनीभूत न होगी तो मैं गृह परित्यागपूर्वक निर्जन वन का सेवन कभी न करूँगा । मैं कदापि तपस्वी न बनूँगा ।

४४
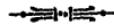
महात्मन् ! हम दोनो पापियो को क्षमा करो ।

आज वसन्तवायु उन्मत्त झंकोर लेकर बह रही है और धूलि तथा सूखी पत्तियो को उड़ाकर दूर फेक रही है। उसी में आपके सब उपदेश भी खो गये है ।

स्वामिन् ! जीवन को माया न बताइए, कारण कि अब तो हमने थोड़े काल के लिए मृत्यु से सन्धि की है तथा कतिपय सुवासित घड़ियों के लिए हम दोनो अमर हो गये है ।

यदि सम्राट् की सम्पूर्ण सेना भी आकर हम पर भयंकर धावा करे तो भी हम दोनो सविषाद सिर हिलाकर यही कहेंगे, "मित्रो, तुम हमारी स्थिरता भंग कर रहे हो। यदि तुमको यही तुमुल क्रीड़ा करनी है तो जाओ, अपने शस्त्र कही अन्यत्र जाकर खड़खड़ाओ, कारण कि, कुछ पलायमान घड़ियो के ही लिए हमको अमरत्व प्राप्त हुआ है ।"

यदि मित्रों का ही जमघट आकर हमको घेर लेगा तो भी हम विनम्रतापूर्वक उनका अभिवादन करके यही कहेंगे,

"आपकी यह असामान्य कृपा हमारे हेतु अत्यन्त कष्टप्रद है। हमारे निवास करने के इस अनन्त गगन मे बड़ा ही स्थानाभाव है, कारण कि वसन्तकाल मे तो यहाँ फूलों की अत्यन्त भरमार होती है तथा मधुमक्खियो के व्यस्त पंख भीड़ के कारण यहाँ आपस में रगड़ खाने लगते है। हमारे इस वैकुंठ मे, जहाँ केवल हम ही दोनो अमर प्राणी रहते है, अत्यन्त ही स्थानाभाव है।"

४५
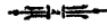
जिन अतिथियों को अवश्य ही जाना है, उनको विदा करो तथा उनके पद-चिह्नो को मिटा डालो ।

जो वस्तुएँ सुगम, साधारण तथा निकटवर्ती हैं, उन्हीं को प्रसन्नता तथा प्रेमपूर्वक अपने हृदय से लगाओ ।

आज उन अस्तित्वहीनों का महोत्सव है, जो अपने मृत्युकाल से अनभिज्ञ है ।

जल की लहरों पर पड़कर चमकनेवाली क्षणिक आभा की भाँति अपने हास्य को एक अर्थहीन विनोद ही बना रहने दो ।

किसी पत्ते के छोर पर पड़े हुए हिमकण की भाँति अपने जीवन को समय की परिधि पर धीरे-धीरे नृत्य करने दो ।

अपनी वीणा के तारों से रुकती हुई अस्थायी तानों को झंकारित करो ।

४६

तुमने मुझे छोड़कर अपनी राह ली !

मेरा तो विचार था कि मैं अपने हृदय में तुम्हारी एकाकी सुवर्ण-संगीत-रचित प्रतिमा स्थापित करके आजीवन तुम्हारा शोक करूँ ।

परन्तु, हाय रे दुर्भाग्य ! समय अत्यन्त ही अल्प रह गया है ।

प्रत्येक वर्ष के साथ मेरी युवावस्था क्षीण हुई जा रही है, वसन्त के दिन पलायित हो रहे हैं तथा अनुभवी पुरुष कहते हैं कि जीवन कमल-पत्र-स्थित हिमकण के समान अनिश्चित है ।

तो क्या यह सब कुछ छोड़कर मैं उसकी राह निहारूँ, जिसने निष्ठुरता-पूर्वक मुझसे मुँह मोड़ लिया है ?

नहीं, ऐसा करना अभद्र तथा असंयत होगा, कारण कि समय अत्यन्त ही अल्प है ।

अस्तु, प्यारी वर्षाऋतु की रात्रियाँ ! तड़-तड़ शब्द करती हुई मेरे समीप आओ ; मेरे सुनहले हेमन्त, प्रफुल्लित हो ; निश्चिन्त ग्रीष्म, आओ तथा सर्वत्र अपना सरस चुम्बन वितरण करो !

आओ, आओ तथा तुम सब आओ!!

मेरे प्यारो ! तुमको ज्ञात तो है कि हम सब नश्वर हैं, तो क्या फिर उस व्यक्ति के लिए अपना हृदय विदीर्ण करना कुछ बुद्धिमानी का काम है, जो स्वयं अपना ही हृदय लेकर भाग गई है ?

और, समय भी तो इतना अल्प रह गया है।

एक कोने में बैठकर चिन्तवनपूर्वक कविताओं में यह लिखना "तुम मेरी जीवन-सर्वस्व हो" अत्यन्त भली बात है।

अपने दु:ख को हृदय से लगाये रखकर सान्त्वना ग्रहण न करने का दृढ निश्चय करना भी परम वीरता है।

परन्तु,—एक नवीन मुखाकृति द्वार के बाहर से झाँक रही है तथा अपने नेत्रों से मेरे नेत्रों की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखती है।

मैं अपने आँसू पोंछ डालने तथा अपनी दु:खान्त रागिनी के स्वर बदल देने को विवश हूँ। कारण कि, समय अत्यन्त ही अल्प रह गया है।

४७

यदि तुम्हारी, ऐसी ही इच्छा है तो लो, मै अपना गायन बन्द किये देता हूँ।

यदि मेरे देखने से तुम्हारे हृदय में धड़कन होने लगती है तो मै तुम्हारे मुखमंडल से भी अपनी दृष्टि हटाये लेता हूँ।

यदि मेरी उपस्थिति से तुम टहलते समय चौक पड़ती हो तो यह लो, मैं तुम्हारे मार्ग से हटकर दूसरा पथ अनुसरण करता हूँ।

यदि मेरे ही कारण तुम्हारे पुष्प-हार-ग्रन्थन मे बाधा पड़ती है तो मै तुम्हारी निर्जन वाटिका से दूर ही रहूँगा।

यदि मेरे ही कारण नदी का जल उद्दंड तथा उग्र रूप धारण कर लेता है तो भविष्य मे मैं तुम्हारे दुकूलों के समीप अपनी नौका संचालन तक न करूँगा।

४८
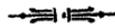
प्रिये ! मुझे अपने माधुर्य के बन्धन से मुक्त कर दो। मुझे चुम्बनो की यह मदिरा अब और अधिक न चाहिए।

दशांग-धूम्र का यह तीव्र आमोद मेरे हृदय को मानो घोट-सा रहा है।

कृपया द्वार खोल दो और प्रभात का प्रकाश भीतर आने दो।

तुम्हारे स्नेहयुक्त प्रगाढ़ आलिंगन के कारण तो मै तुममें सर्वथा ही लीन हो गया हूँ।

मुझे अपनी मोहिनी से मुक्त कर दो, प्यारी ! और फिर मुझे मेरा पुरुषत्व फेर दो जिससे कि मैं तुमको अपना स्वतन्त्र हृदय अर्पण कर सकूँ।

४९
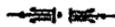
मैं उसका करपीड़न करके उसे अपने हृदय से लगा लेता हूँ।

उसके सौन्दर्य से मैं अपनी बाहुओं को भर लेना चाहता हूँ, चुम्बनों द्वारा उसकी मधुर मुस्कान का मैं बलपूर्वक अपहरण करना चाहता हूँ तथा उसकी कजरारी चितवनों को निज नेत्रों द्वारा पान करना चाहता हूँ।

आह! परन्तु यह सब है कहाँ? आकाश की नीलिमा को भला कौन निचोड़ सकता है?

मैं उसका सौन्दर्य बलपूर्वक पकड़ना चाहता हूँ। वह मुझसे बचकर निकल जाता है और, उसका शरीर-मात्र ही मेरे हाथों में रह जाता है।

श्रान्त तथा छलित होकर मैं पुनः लौट आता हूँ।

केवल देवगणों द्वारा ही स्पर्श किये जाने के योग्य उस पुष्प को भला यह स्थूल शरीर कैसे प्राप्त कर सकता है?

५०

मधुरे ! तुम्हारे साथ संयोग होने को मेरा हृदय दिन-रात आतुर रहता है—उस संयोग के हेतु जो सर्व-भक्षी मृत्यु की भाँति है।

आँधी की भाँति तुम मुझे उड़ाकर फेंक दो, मेरा सर्वस्व ले लो, मेरी नींद बलपूर्वक खोलकर मेरे स्वप्न की सम्पदा भी लूट लो ! मेरा सारा संसार तक मुझसे छीन लो !!

उस घोर अपहरण में, आत्मा की उस नितान्त नग्नता में आओ, हम तुम दोनो ही अनिर्वचनीय सौन्दर्य में लीन हो जायँ।

परन्तु,—हाय री मेरी निरर्थक अभिलाषा ! तन्मयता की यह आशा, हे प्रभो ! सिवाय तुम्हारे और किससे करें ?

५१

अच्छा, तो अब अपना अन्तिम गायन समाप्त करो और आओ, चलो।

रात्रि व्यतीत हो जाने पर तुम कृपया आज की रात अवश्य ही विस्मृत कर देना।

है!, यह मैं अपनी बाहुओं से किसका आलिंगन करने की चेष्टा कर रहा हूँ? भला स्वप्न भी कहीं पकड़े गये हैं?

मेरे आकुल करद्वय किसी को आलिंगन करने के भ्रम में निरे शून्य को ही मेरे ही हृदय पर रखकर पीड़ित कर रहे हैं तथा उसके कारण मेरे वक्षःस्थल में अत्यन्त पीड़ा हो रही है!
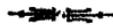
५२

दीपक क्यों बुझ गया ?

मैंने अपने अंचलो द्वारा हवा के झोंकों से उसकी बहुत रक्षा की थी और कदाचित् वह इसी से बुझ गया !

पुष्प मुरझा कैसे गया ?

प्रेम की व्यग्रता में मैंने उसे अपने हृदय से लगा लिया था । सम्भवतः इसी से वह कुम्हला गया !

स्रोत क्यों सूख गया ?

मैंने अपने उपयोग के हेतु उसका बाँध बाँधा था । वह इसी से सूख गया !

और, वीणा के तार कैसे टूट गये ?

मैंने उसकी शक्ति से परे किसी एक स्वर के निकालने का प्रयत्न किया था । इसी से वीणा-तन्त्री टूटी हुई है !!

५३

मेरी ओर अपनी दृष्टि निक्षेपपूर्वक तुम मुझे क्यों लज्जित कर रही हो ?

मैं कुछ भिक्षुक की भाँति तो आया नहीं हूँ।

तुम्हारे उद्यान की सीमान्त झाड़ी के समीप आँगन के बाहर मैं तो केवल घड़ी भर ही खड़ा रहा था।

मेरी ओर अपनी दृष्टि निक्षेपपूर्वक तुम मुझे क्यो लज्जित कर रही हो ?

मैंने तुम्हारी वाटिका से एक गुलाब भी तो नहीं तोड़ा है, एक फल भी तो नही लिया है !

रास्ते के एक ओर, छाया में, जहाँ पर किसी भी पथिक को खड़े रहने का अधिकार है, मैंने तो वहीं आश्रय लिया था ?

मैंने एक गुलाब भी तो नहीं तोड़ा !

हाँ, मेरे पैर अवश्य थक गये थे तथा अकस्मात् वृष्टि होने लगी थी।

झूमती हुई बाँस की डालियो के बीच से वायु सायँ-सायँ शब्द करती हुई बह रही थी।

युद्ध के पराजित सैनिकों की भाँति मेघगण आकाश में भागे जा रहे थे।

मेरे पैर अत्यन्त ही थके हुए थे !

मैं यह कुछ भी तो नहीं जानता कि तुम्हारे हृदय में हमारे प्रति क्या विचार हुए और न मैं यह जानता हूँ कि तुम किसकी प्रतीक्षा में अपने द्वार पर खड़ी थीं।

हाँ, किसी की प्रतीक्षा में किंचित् खुले हुए तुम्हारे नेत्रों को बिजली चमक-चमककर अवश्य चकाचौंध कर रही थी।

भला मैं यह कैसे जान सकता था कि तुम वहीं से मुझे अँधेरे में खड़े हुए भी देख रही थी।

मुझे कुछ भी नहीं मालूम है कि तुमने मेरे सम्बन्ध में क्या क्या विचार किये।

दिन का अवसान हो गया है तथा क्षणेक के लिए वृष्टि भी बन्द हो गई है।

मैं तुम्हारे उद्यान के सीमा-प्रान्त के वृक्ष की छाया के नीचे का अपना वह तृणासन परित्याग करता हूँ।

अब अँधेरा भी हो गया है। अपना द्वार बन्द कर लो, मैं जाता हूँ।

अब दिन का अन्त हो गया है।

५४

इतनी रात गये, हाट उठ जाने के उपरान्त भी, डोलची लिये हुए भला तुम इतनी शीघ्रता से अब कहाँ जा रही हो ?

और सब तो अपनी क्रय-वस्तुएँ लेकर घर लौट आई है; गाँव के वृक्षो के झुरमुट के ऊपर से चन्द्रदेव झाँक रहे हैं।

नाव को पुकारनेवालो के शब्दो की प्रतिध्वनि कृष्णा-जलधारा को पार करके सुदूरवर्ती उस दलदल तक गूँज रही है जहाँ पर जंगली बत्तख़ बसेरा लिया करते हैं।

हाट उठ जाने पर, डोलची हाथ में लिये हुए, तुम इतनी शीघ्रता से भला अब कहाँ जा रही हो ?

निद्रादेवी ने अपने करों से समस्त पृथ्वी के नेत्रो को स्पर्श कर दिया है।

कौवो के घोंसले तक नीरव हो गये है और बाँस के पत्तो की खड़खड़ाहट भी अब शान्त हो गई है।

खेतो से घर को लौटकर आये हुए श्रमजीवी आँगनों में अपनी-अपनी चटाइयाँ बिछा रहे हैं।

हाट उठ जाने पर, डोलची हाथ में लिये हुए, तुम इतनी शीघ्रता से भला अब कहाँ जा रही हो ?

५५

जिस समय तुमने प्रस्थान किया तब तो मध्याह्न का समय था ।

उस समय आकाश में सूर्यदेव अपनी प्रखर किरणों से तप रहे थे ।

जब तुम गये तब मैं अपने कार्यों से निपटकर छज्जे पर अकेली बैठी हुई थी !

सुदूरवर्ती खेतो की भीनी-भीनी सुगन्धि लिये हुए वायु के झोंके रह-रहकर आ रहे थे ।

पेंडुकी झाड़ी में अविश्रान्तरूप से बोल रही थी और मेरे कमरे में एक मधुमक्खी चक्कर लगा-लगाकर दूर के खेतो के समाचार गुनगुना रही थी ।

मध्याह्नकाल की उस गरमी में समस्त गाँव सो रहा था। मार्ग जनशून्य पड़ा था ।

कभी-कभी पत्ते खड़खड़ा उठते थे और फिर शान्त हो जाते थे ।

मैं नील गगन की ओर निश्चल दृष्टि से देख रही थी तथा उत्तप्त आकाश के नीलपट पर उस नाम के अक्षर

अंकित कर रही थी जो मुझे मध्याह्न की गरमी में, जब समस्त गाँव सो रहा था, ज्ञात हुआ था।

मैं अपने केश सँवारना भूल गई थी। आलस्ययुक्त मन्द समीर उनको उड़ा-उड़ाकर मेरे कपोलों पर डालती और क्रीड़ा करती।

सघन दुकूलों के नीचे नदी शान्तिपूर्वक बही जा रही थी।
अलसाई हुई श्वेत मेघमंडली भी निश्चल हो रही थी।
मैं अपने केश सँवारना भूल गई थी!

जिस समय तुमने प्रस्थान किया था तब मध्याह्न का समय था।
मार्ग की धूलि तप रही थी तथा खेत मानो हाँफ-से रहे थे।
घने पत्तों के झुरमुटों में से पेंडुकी बोल रही थी।
जब तुम गये तब मैं अपने छज्जे पर अकेली ही तो थी!

५६

अनेक प्रकार के गार्हस्थिक कार्यों मे व्यस्त अन्य बहुत-सी साधारण स्त्रियो में से मै भी एक साधारण-सी स्त्री थी।

फिर तुम मुझे ही छाँटकर मेरे सामान्य जीवन के सुशीतल आश्रय से दूर क्यो खीच लाये ?

अप्रदर्शित प्रेम बड़ा ही पवित्र होता है। छिपे हुए हृदयो के घने अन्धकार में तो यह रत्न की भाँति चमकता है, परन्तु, दिन के जिज्ञासु-प्रकाश मे यह घोर अन्धकारमय बना रहता है।

आह! तुमने तो मेरे हृदय के आवरण को छेदकर मेरे निरीह तथा कम्पित प्रेम को खुले मैदान मे खीच लाकर खड़ा कर दिया तथा उसकी उस स्निग्धस्थली को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, जहाँ पर किसी समय वह सुख से निवास किया करता था!

अन्य स्त्रियाँ अब भी वैसी ही बनी हैं।

उनके अन्तस्थ हृदय का किसी को भी पता नही है तथा उनको स्वयं अपना ही रहस्य नही ज्ञात है।

वे निर्बोधतापूर्वक अब भी हँसती तथा रोती हैं,

वार्तालाप तथा अपने अन्य गृह-कार्य करती हैं। नित्य वे मन्दिर जाती है, दीपालोक करती है तथा नदी से जल भरकर लाती है।

मुझे तो यह आशा थी कि मेरा प्रेम निराश्रयता की भीषण लज्जा से बच जायगा, परन्तु हाय! तुमने तो अपना मुँह ही मोड़ लिया।

हाँ जी! तुम्हारे सम्मुख तो तुम्हारा मार्ग खुला पड़ा है, परन्तु हाय! तुमने हमारे लौटने के सब मार्ग बन्द कर दिये और मुझे नितान्त नग्नावस्था में संसार के सम्मुख ला खड़ा किया जिसके अनिमेष नेत्र, निरन्तर, रात-दिन, मेरी ही ओर टकटकी बाँधकर देख रहे है!

५७

विश्व ! मैंने तेरा एक फूल तोड़ लिया ।

मैंने आवेगपूर्व्वक उसे अपने हृदय से लगा लिया परन्तु उसका काँटा मुझे चुभ गया ।

जब दिन का अवसान होने पर अन्धकार का साम्राज्य हुआ, तब मुझे यह ज्ञात हुआ कि फूल तो कुम्हला गया है परन्तु,—उसकी वह पीड़ा अब भी बनी हुई है !

विश्व ! सुगन्धित तथा रूपगर्वित और भी तो पुष्प तुझमें खिलेंगे ।

परन्तु, पुष्प-चयन की मेरी अवस्था अब बीत गई है और यद्यपि इस निबिड़ अन्धकारमयी रजनी में मेरे पास मेरा वह गुलाब तो नहीं बचा; परन्तु हाँ, उसके काँटे की कसक अब भी बाकी है ।

५८

एक दिन प्रातःकाल पुष्पोद्यान में एक नेत्रविहीना बालिका एक सुन्दर पुष्पहार एक कमलपत्र में रखकर मुझे अर्पित करने को ले आई।

मैंने उस हार को अपने गले में पहिन तो लिया, परन्तु मेरे नेत्रों में आँसू छलछला आये।

मैंने उस बालिका का चुम्बन करके कहा, "तुम इन पुष्पों की ही भाँति अन्धी हो।"

"तुमको स्वयं ही यह ज्ञात नही है कि तुम्हारा उपहार कितना सुन्दर है!"

५६

रमणी ! तुम केवल ईश्वर की ही अद्भुत रचना नही, वरन् मनुष्यो द्वारा भी सुचारु रूप से रची जाती हो। वे सर्वदा तुमको अपने हृदयों से सौन्दर्य-दान करते रहते हैं।

कविजन तो तुम्हारे हेतु सुवर्ण उपमालंकारो का सुन्दर वितान तनते रहते है तथा चित्रकार तुम्हारे आकार को नित्य नया अमरत्व प्रदान करते है !

समुद्र तुमको अपनी मुक्ता प्रदान करता है, पृथिवी तुमको अपने गर्भ से हेम दान देती है तथा ग्रीष्मऋतु की वाटिकाएँ अपने पुष्प तुम्हारे शृंगार के हेतु, तुम्हारे आच्छादन के हेतु तथा तुमको और भी अधिक मूल्यवान बनाने के हेतु देती रहती है !

पुरुषो के हृदय की कामनाओं ने तो तुम्हारे यौवन पर अपनी कीर्ति तक न्योछावर कर दी है !

आधी तो तुम स्त्री हो तथा आधी स्वप्न हो, भामिनी !!

६१

शान्त हो, मेरे हृदय ! वियोगकाल को दुःखद न बनाओ !

इसको मृत्यु न समझकर अन्तिम सम्पूर्णता समझो ।

प्रेम को द्रवित होकर स्मृति के तथा दुःख को रागिनी के रूप मे परिवर्तित हो जाने दो ।

नील गगन में आजीवन उड़ते रहने का अन्त आज तुम अपने घोसले पर आकर विश्रामपूर्वक पंख सिकोड़ कर करो ।

अपने करो के अन्तिम स्पर्श को रजनीपुष्पो की भाँति कोमल बनाओ !

सुमनोहर अन्त ! क्षण भर शान्त खड़े रहो तथा अपने अन्तिम शब्दो को निस्तब्धतापूर्वक ही कहो ।

मैं नतमस्तक होकर तुम्हारा अभिवादन करता हूँ एवं तुम्हारे पथप्रदर्शनार्थ अपने करो को ऊँचा उठाकर तुमको दीपालोक दिखाता हूँ !!

६२

स्वप्न के अस्पष्ट मार्ग से मैं अपनी उस प्रेमिका को खोजने गया, जो किसी पूर्वजन्म में मेरी ही थी।

उसका घर एक निर्जन पथ के अन्त पर था।

सायंकालीन समीर मे उसका पालतू मोर अपने अड्डे पर बैठा हुआ ऊँघ रहा था तथा कबूतर अपने-अपने कोटरो में चुपचाप बैठे हुए थे।

अपने हाथ का दीपक द्वार के पार्श्व-भाग में रखकर वह मेरे सम्मुख खड़ी हो गई।

उसने अपने विशाल नेत्र मेरी ओर उठाकर मानों मूक प्रश्न किया; "मित्र, कुशल से तो हो ?"

मैंने उत्तर देने का बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु हम दोनो अपनी भाषाओं को खो तथा विस्मृत कर चुके थे!

मै बारम्बार सोचता तथा निरन्तर स्मरण करता रहा, परन्तु हमें अपने नाम ही ध्यान में न आये!

उसके नेत्रो में आँसू छलछलाने लगे। उसने अपना

दाहिना हाथ मेरी ओर उठा दिया। और मैं, उसे अपने कम्पायमान करो में लेकर मौन खड़ा रहा !

सायंकाल के शीतल समीर में हमारे दीपक झिलमिलाकर बुझ चुके थे।

६३

पथिक ! क्या तुम अवश्य ही जाओगे ?

रात्रि अत्यन्त निस्तब्धतापूर्ण है तथा निविड़ अन्धकार मानों मूर्च्छित होकर वन-प्रदेश पर गिर रहा है।

हमारे छज्जे पर दीपक अब भी शुभ्र प्रकाश फैला रहे हैं, पुष्प अभी सब ताज़े हैं तथा कमनीय नेत्रयुग्म अब भी निद्रारहित हैं।

क्या तुमसे हमारा बिछोह होने का समय आ गया ?

पथिक ! क्या तुम्हारा जाना नितान्त आवश्यक है ?

हमने अपने विनीत करो द्वारा तुम्हारे पैरो को अवगुण्ठित नहीं किया है।

तुम्हारे लिए कपाट खुले हुए हैं तथा तुम्हारा अश्व द्वार पर सजा हुआ खड़ा है।

यदि हमने तुमको रोकने का प्रयत्न भी किया है तो केवल अपने गायनों द्वारा ही !

यदि हमने तुमको रोक रखने का कुछ प्रयत्न भी किया है तो केवल अपने दुखी नेत्रो ही से !

पथिक ! हम तुमको रोकने में असमर्थ हैं। हमारे पास तो केवल हमारे आँसू ही हैं !!

तुम्हारे नेत्रो में यह कैसी सतृष्ण अग्नि उद्दीप्त हो गई है ?

तुम्हारी शिराओं में यह कैसा व्याकुल, अविराम तथा ज्वराक्त रक्त बह रहा है ?

अन्धकारमय नेपथ्य से तुम्हारा कौन आह्वान कर रहा है ?

आकाश के नक्षत्रो मे लिखा हुआ तुमने कौन-सा विभीषिकामय मन्त्र देख लिया है कि अत्यन्त गुप्त सन्देश दान-पूर्वक नीरव तथा अद्भुत रात्रि का उदासीनकारी अन्धकार तुम्हारे हृदय मे एकदम प्रवेश कर गया है ?

तुमको यदि आनन्दमय सयोगो की आकांक्षा नहीं है; यदि तुमको शान्तिलाभ की ही परमाभिलाषा है तो श्रान्त-हृदय पथिक ! लो, हम अपने सब दीपक बुझाये देते हैं तथा वीणा-वादन भी रोकते हैं।

पत्तो के खड़खड़ाहटयुक्त अन्धकार में हम तुम दोनो चुपचाप बैठेंगे और परिश्रान्त रोहिणीरमण हमारी खिड़की पर अपना मलिन-पीत प्रकाश डालेंगे।

पथिक ! अर्धरात्रि की अन्तस्थली से निकलकर किस अनिद्रित आत्मा ने तुमको यों स्पर्श कर दिया है ?

६४

मार्ग की परितप्त धूलि पर तो मैंने अपना सारा दिन व्यतीत किया;—

अब जो सायंकाल की शीतलता में मैंने सराय का द्वार खटखटाया तो क्या देखता हूँ कि सराय निर्जन तथा टूटी हुई पड़ी है !

एक भयावह अश्वत्थवृक्ष की भूखी तथा वज्र जड़े दाँत निकाले हुए दीवाल की सन्धियों में घुस गई हैं।

एक वह भी समय था, जब यात्री यहाँ आकर अपने थके हुए पैर धोया करते थे।

वे सराय के प्रकोट में सायंकालीन शशि के मन्द प्रकाश में अपनी चटाइयाँ डालकर बैठते तथा विचित्र देशों की बातचीत किया करते।

प्रभात मे वे गतश्रम होकर उठते। उस समय पक्षीगण अपने मधुर गायनो द्वारा उनको प्रसन्न करते तथा स्नेही सुमन अपने सिर झुकाकर मार्ग के किनारे से उनका अभिवादन किया करते।

परन्तु, जब मैं यहाँ आया—उस समय एक दीपक भी तो मेरी प्रतीक्षा में नहीं जल रहा था !

माली

प्राचीरों पर से कतिपय प्राचीन तथा विस्मृत दीप-शिखाओं की कज्जल-रेखाएँ मात्र ही मेरी ओर दृष्टिविहीनों की भाँति देख रही थी।

शुष्क सरोवर के किनारे की झाड़ियों में जुगनूँ चमक रहे थे तथा बाँस की शाखाएँ मार्गों पर उगी हुई घास पर अपनी छाया डाल रही थीं।

आह! अपना जीवन-दिवस व्यतीत कर चुकने पर भी मैं आज यहाँ किसी का अतिथि नहीं हूँ!

अभी तो अत्यन्त दुस्तर तथा लम्बी रात्रि मुझे काटनी पड़ी है तथा मैं अब अत्यन्त थक भी गया हूँ!!
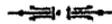
क्या आपने मुझे फिर पुकारा ?

रात्रि प्रारम्भ हो चुकी है। प्रेम की साग्रह भुजाओं की भाँति शिथिलता मेरे शरीर से लिपट-सी रही है।

क्या आप मुझे बुला रही हैं ?

निर्दयी स्वामिनी ! मैं अपना सम्पूर्ण दिन तो आपको दे ही चुका था ! अब क्या मेरा रात्रि का समय भी मुझे न छोड़िएगा ?

कभी न कभी तो प्रत्येक वस्तु का अन्त होता ही है तथा विशेषतः रात्रि के एकान्तकाल का तो प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है।

निशा की निस्तब्धता भेदनपूर्वक अपने आह्वान शब्दों द्वारा मुझको आहत करने की भला क्या आवश्यकता थी ?

क्या आपके द्वार पर सायंकाल का सुषुप्ति-संगीत भी प्रभावहीन है।

क्या आपके इन निर्दय प्रासादों के ऊपर नीरव नक्षत्र-मंडली आकाश में आरोहण नहीं करती ?

माली

क्या आपकी वाटिका में पुष्प पृथिवी पर गिरकर कोमल मृत्यु को नही प्राप्त होते ?

अशान्त स्वामिनी ! क्या मुझे बुलाना अत्यावश्यक है ?

अच्छा, तो फिर प्रेम के दुखिया नेत्रों को व्यर्थ ही प्रतीक्षा तथा रुदन करने दो !

दीप को निर्जन गृह मे ही जलने दो !

नौकाओ पर श्रान्त श्रमजीवियो को अपने घर जाने दो !

मैं अपना स्वप्नानुभव परित्याग करके आपके आह्वान पर आता हूँ !!

६६

एक भटकता हुआ उन्मत्त व्यक्ति पारस पत्थर खोज रहा था। उसके धूल-धूसरित ताम्रवर्ण केश उलझकर जटिल हो गये थे, छाया की भाँति उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल था, उसके हृदय के बन्द कपाटो की ही भाँति उसके ओष्ठ भी बन्द थे तथा अपना जोड़ा खोजनेवाले जुगनूँ की भाँति उसके नेत्र उद्दीप्त हो रहे थे।

अनन्त सागर उसके सम्मुख गर्जन कर रहा था।

तुमुल लहरे अविश्रान्तरूप से अपने अन्तर्हित कोषो की बात गरज-गरजकर सुना रही थी तथा संसार को अपने तात्पर्य से अनभिज्ञ देखकर उसका परिहास कर रही थी।

सम्भव है कि उस पागल की सब आशाओं का अन्त हो गैया हो, परन्तु तौ भी, वह इसलिए विश्राम नहीं लेता था कि उसकी जिज्ञासा अब उसके जीवन का एक अंग हो गई थी।

जिस प्रकार महासागर अपनी तरंग-रूपी भुजाएँ सदैव ऊपर की ओर किसी अप्राप्य वस्तु के ग्रहण करने को उठाता है,—

जिस प्रकार नक्षत्रगण निरन्तर परिक्रमा दे-देकर उस

उद्देश्य को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, जो कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता,—

ठीक उसी प्रकार, समुद्र के निर्जन किनारे पर, वह पागल अपने धूल से भरे हुए ताम्र-केशों सहित पारस की खोज मे निरन्तर घूमता रहा ।

एक दिन किसी ग्रामीण बालक ने उसके पास आकर पूछा, "कहो, तुम्हारे कमर में पड़ी हुई यह सुवर्ण-संकल तुमको कहाँ मिली ?"

पागल चौक पड़ा,—जो संकल किसी समय लोहे की थी, आज वही वास्तव में सोने की हो गई थी !

वह स्वप्न नहीं देख रहा था, परन्तु उसे यह भी तो नहीं ज्ञात था कि यह आश्चर्य-परिवर्तन कब हुआ ।

दु:ख से उसने अपना माथा पीट लिया—कहाँ, हाय कहाँ उसकी अज्ञानता में उसको सफलता लाभ हो गई थी !

उसका यह एक अभ्यास-सा पड़ गया था कि वह कंकड़ो को उठा-उठाकर सङ्कल से छुला लेता और बिना यह देखे ही कि कोई परिवर्तन हुआ भी कि नहीं वह उनको फेंक दिया करता तथा इस प्रकार उस पागल ने पारस प्राप्त करके भी पुनः उसे खो दिया ।

सूर्यदेव पश्चिम दिशा में अस्त हो रहे थे तथा आकाश सुवर्ण-रंजित हो रहा था।

निर्बल, कमर झुकाये तथा उखड़े हुए वृक्ष की भाँति भग्न-हृदय बेचारा पागल, पुनः उसी मार्ग पर अपनी खोई हुई सम्पत्ति को ढूँढ़ने के हेतु लौट पड़ा।
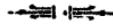
६७

यद्यपि रात्रि ने धीरे-धीरे आकर सब गायनों के बन्द हो जाने का संकेत दे दिया है;

यद्यपि तुम्हारे साथी विश्राम के हेतु चले गये हैं तथा तुम भी परिश्रान्त हो;

यद्यपि रात्रि का अन्धकार भयजनक प्रतीत हो रहा है तथा आकाश के मुख पर एक आवरण-सा पड़ा हुआ है;

परन्तु पक्षी ! मेरे पक्षी ! मेरी बात सुनो तथा अपने पंख मत मोड़ो ।

यह वन-प्रदेश की पत्तियों का अन्धकार नहीं है, प्रत्युत यह तो एक अत्यन्त काले सर्प के समान विस्तृत होनेवाला समुद्र है ।

यह प्रफुल्लित होती हुई जुही का नृत्य नहीं है, यह तो ज्योतिवान् फेन फैला हुआ है ।

आह ! अब कहाँ तो प्रकाशवान् हरित दुकूल हैं तथा कहाँ तुम्हारा घोसला है ?

पक्षी ! मेरे पक्षी ! मेरी बात सुनो तथा अपने पंख मत मोड़ो ।

तुम्हारे पथ मे जनहीन रात्रि का सामना है। प्रभात का प्रकाश तो उस सघन पार्वत्यप्रदेश के पीछे पड़ा हुआ सो रहा है।

नक्षत्रगण श्वास रोके हुए घड़ियाँ गिन रहे है तथा निस्तेज रजनीश गम्भीर निशा को धीरे-धीरे पार कर रहे हैं।

पक्षी ! मेरे पक्षी ! मेरी बात मानो तथा अपने पंख अभी न मोड़ो।

तुमको न तो कोई आशा है तथा न किसी का भय ही है।

न तो कोई बोल रहा है, न कोई धीरे-धीरे अस्फुट शब्द कह रहा है तथा न कोई चीत्कार ही कर रहा है।

तुम्हारा न तो कही घर-द्वार है और न कही तुम्हारी विश्राम-शय्या ही है।

तुम्हारे पास तो केवल तुम्हारे पंख हैं तथा सामने मार्ग-हीन अनन्त आकाश है।

पक्षी ! मेरे पक्षी ! मेरी बात मानो तथा अभी अपने पंख न मोड़ो।

६८

बन्धु ! कोई सदा जीवित नहीं रहता और न कोई वस्तु ही बहुत काल के लिए होती है। इसी को स्मरण रखो और सदा प्रसन्नचित्त रहो।

केवल हम लोगों का ही जीवन एक महान् भार नहीं है तथा हमारे ही मार्ग के सम्मुख अनन्त यात्रा नहीं है।

किसी एक ही कवि को कोई प्राचीन गायन नहीं गाना है।

पुष्प मुरझाकर सूखा ही करते हैं, परन्तु उनके पहिननेवालों को सदा उनके लिए शोक नहीं मनाना पड़ता।

बन्धु ! यही स्मरण रखो और सदा प्रसन्नचित्त रहो।

कभी-न-कभी तो स्थायी विरामकाल आकर सम्पूर्णता को संगीत से युक्त कर ही देगा।

सुवर्णच्छाया में विलीन होने के हेतु जीवन अवसान-सन्ध्या की ओर झुका जा रहा है।

प्रेम, कभी-न-कभी तो विषादपान करने तथा अश्रुओं के स्वर्ग में ले जाये जाने के हेतु अपनी क्रीड़ा से अवश्य ही खींच बुलाया जायगा।

बन्धु ! यही स्मरण रखो और निर्द्वन्द्व रहो।

तीव्रता से बहनेवाली वायु से कहीं वे नष्ट न हो जायँ, इस डर से हम लोग जल्दी ही पुष्प-चयन कर लेते हैं।

विलम्ब करने से अन्तर्धान हो जानेवाले चुम्बनो को अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक प्राप्त कर लेने से हमारे रक्त में तीव्रता आती है और नेत्रों की ज्योति प्रबल हो उठती है।

हमारा जीवन उत्सुकतापूर्ण है तथा हमारी कामनाएँ अत्यन्त उत्कट है; क्योंकि समय, घड़ी के घंटो के शब्दो द्वारा वियोग की घड़ी की प्राक्-सूचना हमको निरन्तर दे रहा है।

बन्धु ! यही स्मरण रखो और प्रसन्न रहो।

किसी वस्तु को साग्रह पकड़ने तथा फिर उसको तोड़ कर भूमि पर फेंक देने के लिए हमारे पास समय नहीं है।

अपने स्वप्नो को अपने अंचलो के नीचे छिपाये हुए समय की घड़ियाँ शीघ्रतापूर्वक व्यतीत हुई जा रही हैं।

हमारा जीवन अल्प है; प्रेम करने का अवसर इसमें अत्यन्त ही कम है।

यदि इसमें कर्तव्य तथा उसकी असह्यता मात्र ही होती तो यही जीवन अत्यन्त लम्बा बोध होता।

बन्धु ! इसे ही स्मरण रखो और आनन्द करो।

सौन्दर्य हमे अत्यन्त प्रिय है, कारण कि वह सदैव हमारे इस जीवन के द्रुत ताल पर ही नृत्य किया करता है।

ज्ञान हमारे लिए बड़ा ही बहुमूल्य है, कारण कि हमको उसे संपूर्ण करने का कभी भी सावकाश न प्राप्त होगा।

समस्त कार्य अनन्त स्वर्ग मे ही सम्पादित तथा समाप्त होते है!

परन्तु, इस पृथिवी के माया-पुष्प मृत्यु द्वारा ही चिर-काल तक हरे-भरे रहते है।

बन्धु! इसे ही स्मरण रखो तथा प्रसन्न रहो।

६९
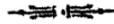
मैं सुवर्ण-मृग ढूँढ़ रहा हूँ !

मित्रो ! तुम चाहे भले ही मुझ पर हँस लो, परन्तु वास्तव मे मैं तो बारम्बार बचकर भाग जानेवाली इस मरीचिका का ही अनुसरण कर रहा हूँ !

मैं पर्वत तथा घाटियाँ उल्लंघन करता हूँ—संज्ञाहीन देशो में पर्यटन करता फिरता हूँ—केवल इसी लिए कि मैं सुवर्ण-मृग ढूँढ़ रहा हूँ !

तुम तो हाट में आकर तथा वस्तुएँ मोल लेकर अपने-अपने घर को लौट भी जाते हो, परन्तु ज्ञात नहीं कि कब तथा कहाँ इस गृहहीन वायु के मोहिनीमंत्र ने मुझे वश कर लिया।

मेरे हृदय मे किसी भी विषय की चिन्ता नही है; मैं अपना सारा घर-बार अपने बहुत पीछे छोड़ आया हूँ !

मैं पर्वतो तथा घाटियो का उल्लंघन करता फिरता हूँ—संज्ञाहीन देशो में पर्यटन करता हूँ—केवल इसी हेतु कि मैं सुवर्ण-मृग ढूँढ़ रहा हूँ !

७०
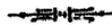
मुझे अपने बाल्यजीवन का वह दिन स्मरण है जब मैंने कागज़ की एक छोटी-सी नौका बनाकर नाली में बहाई थी।

वर्षा के दिन थे; मैं अकेला था: आनन्दपूर्वक खेल रहा था!

और, मैंने एक छोटी-सी कागज़ की नौका बनाकर नाली में बहा दी।

अकस्मात् काले बादल घिर आये, हवा के थपेड़े चलने लगे तथा मूसलाधार वृष्टि होने लगी।

मटमैले जल की नालियाँ ज़ोरों से बढ़कर चल निकलीं और उन्होंने मेरी उस बेचारी नौका को डुबा दिया!

मैंने अत्यन्त दुःख से सोचा कि अन्धड़ तथा वृष्टि जान-बूझकर मेरे आनन्द को ही नष्ट करने आई थी; मानों उनकी ईर्षा मुझसे ही थी!

अब आज वर्षाऋतु के सघन दिवस अत्यन्त लम्बे प्रतीत होते हैं तथा मैं बैठा अपने जीवन के उन सब खेलों को स्मरण कर रहा हूँ जिनमें मैं सदैव से हारता आया हूँ।

अपनी यातनाओं के हेतु मैं अपने भाग्य को ही दोषी ठहरा रहा था कि अचानक मुझे उस छोटी सी कागज की नौका का स्मरण हो आया, जो नाली में डूब गई थी!

७१

अभी दिन डूबा नहीं है तथा मेला,—नदी-तट पर का मेला—अभी नहीं उठा है।

मुझे भय था कि मेरा सारा समय व्यर्थ हो गया है तथा मेरी अन्तिम मुद्रा भी खो गई है।

परन्तु नहीं, भाई ! नहीं, अब भी मेरे पास कुछ न कुछ तो बच ही रहा है। मेरे भाग्य ने मुझसे सभी कुछ नहीं छल लिया है !

क्रय-विक्रय समाप्त हो गया है।

परस्पर का लेन-देन भी तय हो चुका और अब मेरे घर लौटने का समय हुआ है।

परन्तु, द्वारपाल ! क्या तुम अपना कर माँगते हो ?

डरो नहीं, मेरे पास अब भी कुछ बाकी बच ही रहा है। मेरे भाग्य ने मुझसे सभी कुछ नहीं छल लिया है !

वायु का समीरण बन्द होने से आँधी आने की आशंका हो रही है तथा पश्चिम दिशा में झुके हुए बादल भी कुछ अच्छे नहीं हैं।

निश्चल जलराशि बस वायु की ही प्रतीक्षा कर रही है।

मैं रात्रि होने से पूर्व ही नदी पार हो जाने की आशा से शीघ्रतापूर्वक बढ़ा।

नाविक ! क्या तुम अपनी उतराई माँगते हो ?

अच्छा भाई ! मेरे पास अब भी कुछ बच रहा है। मेरे भाग्य ने मुझसे सभी कुछ नहीं छल लिया है !

रास्ते में वृक्ष की छाया के नीचे भिक्षुक बैठा है। हा, खेद ! वह भी मेरे मुख की ओर किसी आशा से ही देख रहा है !

वह समझ रहा है कि मेरे पास आज के उपार्जित धन का अत्यन्त बाहुल्य है।

हाँ भाई ! मेरे पास अब भी कुछ-न-कुछ तो बच ही रहा है। मेरे भाग्य ने मुझसे सब कुछ नहीं छल लिया है !

रात्रि का अन्धकार बढ़ रहा है तथा पथ निर्जन हो चला है। वृक्ष की पत्तियों के बीच में जुगनू चमक रहे हैं।

हैं, तुम कौन, धीरे-धीरे पाँव दबाये हुए, मेरे पीछे चले आ रहे हो ?

अरे, मैं समझ गया ! तुम्हारी इच्छा मेरे उपार्जित धन को लूट लेने की है ! अच्छा आओ, मैं तुमको भी हताश नहीं करूँगा।

कारण कि अब भी मेरे पास कुछ-न-कुछ अवश्य ही बच

रहा है तथा मेरे भाग्य ने मेरा सर्वस्व ही अपहरण नहीं कर लिया है !

आधी रात को मैं घर पहुँचा। मेरे दोनों हाथ ख़ाली थे।

तुम व्याकुल नेत्रों से द्वार पर खड़े हुए अनिद्रित तथा शान्तभाव से मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे।

भयभीत तथा कम्पायमान पक्षी की भाँति तुम प्रेम के आवेग में झपटकर मेरे हृदय से लग गये।

अच्छा, अच्छा, मेरे भगवान् ! अब भी मेरे पास बहुत कुछ है। मेरे भाग्य ने मुझसे सभी कुछ नहीं छल लिया है !!

७२

कालान्तर के कठिन परिश्रम से मैंने एक मन्दिर बना कर खड़ा किया। उसमें कही पर भी कोई द्वार अथवा खिड़की नहीं थी तथा उसकी प्राचीरे भारी पाषाण-खंडो की बनी हुई थी।

मैंने सबको भुला दिया, संसार से दूर रहने लगा और दत्तचित्त होकर वेदी पर अपने हाथो से स्थापित की हुई प्रतिमा की ओर, एकाग्र दृष्टि से देखने लगा।

उस मन्दिर के भीतर अंधकार के कारण सदैव रात्रि ही बनी रहती थी तथा वहाँ सुगन्धियुक्त तैल के दीपक जला करते।

दशांग की अनवरत धूम्र-शिखा ने अपने सघन पाश में मेरे हृदय को जकड़ लिया।

निद्रा परित्यागपूर्वक मैं मन्दिर की दीवालों पर विचित्र-विचित्र प्रकार के चित्र, गोरखधन्धे के समान अद्भुत रेखाओं से खींचा करता। सपक्ष घोड़ों, मानवमुखाकृति के पुष्पो तथा सर्पों के समान अवयवोंवाली स्त्रियों के चित्र अंकित किया करता।

उस मन्दिर में कहीं पर भी ऐसा कोई मार्ग नहीं था, जिसमें से चिड़ियों के मनोहर गीत, पत्तियों की खड़खड़ाहट

अथवा व्यस्त ग्राम के कोलाहल का शब्द उसके भीतर प्रविष्ट हो सकता।

उसके अँधेरे गुम्बद में केवल मेरे स्तोत्रपाठ की प्रतिध्वनि ही गुंजायमान हुआ करती।

नुकीली अग्नि-शिखा की भाँति धीरे धीरे मेरा मस्तिष्क अत्यन्त तीव्र तथा निश्चल हो गया तथा मेरी सारी इन्द्रियाँ परमानन्द में निमग्न हो गईं।

मुझे समय के व्यतीत होने का सब ज्ञान लोप हो चला था कि अचानक मेरे मन्दिर पर भयंकर वज्रपात हुआ तथा एक विषादजनिता पीड़ा मेरे हृदय को छेदने लगी।

दीपक मलिन तथा लज्जित-सा बोध होता था तथा दीवाल पर की अद्भुत चित्रकारी, संकलबद्ध स्वप्नों की भाँति उस प्रकाश में ऐसी निरर्थक दिखाई पड़ने लगी मानों लज्जा के कारण छिपने को उत्सुक हो।

वेदी पर स्थापित मूर्ति की ओर दृष्टि फेरने पर मैंने देखा कि वह मुस्करा रही थी तथा भगवान् के सजीव स्पर्श द्वारा प्राणयुक्त हो गई थी। मैंने जिस रात्रि को मन्दिर के भीतर बन्दी कर रखा था, वह अपने पंख फैलाकर अन्तर्धान हो गई थी।

७३
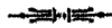
तुम अमित धनराशि की स्वामिनी नहीं हो, मेरी सन्तोषी, धूलधूसरित माँ वसुन्धरे !

तुम अपने सन्तानों के उदरपोषण के निमित्त निरन्तर कठिन परिश्रम किया करती हो, परन्तु अन्न अत्यन्त ही दुर्लभ हो गया है।

हम लोगों के हेतु जो तुम्हारा आनन्दोपहार है वह भी तो कभी सम्पूर्ण नहीं हो पाता।

जो खिलौने तुम अपने बच्चों के हेतु बनाती हो, वे भी अत्यन्त निर्बल हैं।

तुम मेरी सभी क्षुधित आशाएँ पूरी नहीं कर सकती हो, तो क्या इसके लिए हम तुमको छोड़ दें?

नहीं, तुम्हारी विषाद-छायायुक्त मुस्कान मेरे नेत्रों को अत्यन्त ही अभिराम है।

तुम्हारा अपूर्ण तथा असीम प्रेम हमारे हृदय को अत्यन्त ही प्रिय है।

तुमने अपने स्तनों से हमको जीवनपान तो करा दिया परन्तु तुम हमको अमरत्व न दे सकीं। इसी कारण तुम्हारे नेत्रों से सदैव के लिए निद्रा दूर हो गई है।

युगो से तुम विविध रंगो तथा गायनों द्वारा स्वर्ग निर्माण करने के हेतु परिश्रम कर रही हो, परन्तु तुम्हारा वह स्वर्ग अभी तक न बन पाया,—उसका अकिञ्चन आभासमात्र ही अभी बना है।

तुम्हारी सुन्दर सृष्टि पर अश्रुओ का एक कोहरा छाया हुआ है।

मैं तुम्हारे मूक हृदय को अपने गायनो से मुखरित कर दूँगा तथा अपना प्रेम तुम्हारे स्नेह से संयोजित करूँगा!

मैं अपनी बाहुओ के परिश्रम द्वारा तुम्हारी पूजा करूँगा!

मैने तुम्हारी सुकोमल मुखाकृति देख ली है, माँ! तथा मै तुम्हारी इस शोकातुर रज से भी अत्यन्त प्रेम रखता हूँ, माता वसुन्धरे!

७४
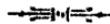
जैसे इस विश्व के विस्तीर्ण सभा-भवन में साधारण तृण भी सूर्य की किरणो तथा अर्धरात्रि के समुज्ज्वल नक्षत्रो के बराबर ही बैठने को स्थान पाता है;—

उसी प्रकार संसार के हृदय में मेरा गायन भी मेघों तथा वनों के संगीत के साथ ही समस्थित है।

परन्तु, धनिक व्यक्तियो! तुम्हारी सम्पत्ति को न तो भगवान् अंशुमाली के सरल तथा आनन्दमय स्वर्ण-सौन्दर्य का ही कोई भाग प्राप्त है और न ध्यानमग्न शशि की ही शीतल तथा मन्द ज्योति मे स्थान है।

सर्वव्यापी नील गगन की शुभ विभूति भी तुम्हारी अतुल धन राशि को नही प्राप्त होती।

और, वह धनराशि मृत्यु के निकट आने पर तो हीन तथा क्षीण होकर मिट्टी में मिल जाती है।

७५
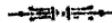
अर्द्धरात्रि के समय भावी संन्यासी ने कहा:—

"अपना घर-बार छोड़कर ईश्वर की खोज में निकलने का यही समय है। आह, मुझे आज तक किसने यहाँ मायाजाल में फँसा रखा था?"

भगवान् ने धीरे से कहा, "मैंने", परन्तु, उसके तो कान बन्द थे।

नन्हे-से बच्चे को स्तन से लगाये हुए उसकी स्त्री खाट के एक पार्श्व में पड़ी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थी।

संन्यासी बोला, "इतने दिनों तक मुझे मूर्खता में भुला रखनेवाले तुम दोनों कौन हो?"

फिर वही दैवी वाणी हुई, "यही ईश्वर है", परन्तु उसने इसे भी नहीं सुना।

बालक निद्रा में चौंककर अचानक चिल्ला उठा और माता से चिपट गया।

भगवान् ने आज्ञा दी, "मूर्ख, रुक जा। अपनी गृहस्थी न छोड़!" परन्तु उसने फिर भी न सुना।

भगवान् ने दीर्घ निःश्वासपूर्वक दुखी होकर कहा, "आह, मेरे सेवक मुझे ही परित्याग करके फिर मेरी ही खोज में क्यों भटकते फिरते हैं?"

७६

मन्दिर के सामने मेला लगा हुआ था। सबेरे ही से प्रारंभ होकर वृष्टि अब तक होती रही थी और अब दिन अस्त होने ही वाला था।

सारे जनसमुदाय के एकत्रित हर्ष से भी अधिक समुज्ज्वल मुस्कान उस बालिका की थी, जिसने एक पैसे की एक ताड़ की तुरही मोल ली थी।

उस तुरही की तीव्र, हर्षयुक्त चीत्कार ने सारी भीड़ के हर्षनाद तथा कोलाहल को दबा लिया।

मनुष्यों की एक अनन्त भीड़ आकर वहाँ एकत्रित हुई थी। मार्ग में कीचड़ हो गया था, नदी मे जल बढ़ आया था तथा अविरल जलवर्षा के कारण खेत पानी में डूब गये थे।

सारे जनसमुदाय के कष्ट से भी अधिक दुःख उस छोटे बालक का था, जिसके पास रँगी हुई छड़ी मोल लेने को एक पैसा न था।

दूकान की ओर तृषित तथा लोलुप दृष्टि से देखते हुए उसके नेत्रों ने मनुष्यों की उस भीड़ को अत्यन्त ही दयनीय बना दिया।

७७

पश्चिम-देश से आया हुआ श्रमजीवी तथा उसकी स्त्री पजावे के हेतु ईंट बनाने को मिट्टी खोदने में व्यस्त है।

उनकी छोटी बालिका नित्य नदी पर के घाट पर जाती तथा अत्यन्त परिश्रमपूर्वक बरतन माँजा करती ।

उसका छोटा भाई सिर मुड़ाये तथा अपनी काली नंगी देह मे मिट्टी लपेटे उसके पीछे-पीछे जाया करता तथा अपनी बहिन की आज्ञानुसार सन्तोषपूर्वक नदी के ऊँचे टीले पर बैठा रहता।

गृहस्थी के चिन्ता-भार से अत्यन्त गम्भीर अपने माता की वह छोटी-सी परिचारिका, भरा हुआ घड़ा सिर पर रखे, बाये हाथ मे चमकती हुई पीतल की झारी लटकाये तथा दाहिने हाथ से भाई का हाथ पकड़े, घर लौटा करती।

एक दिन मैंने देखा कि वह नग्न बालक पाँव फैलाये हुए बैठा है।

उसकी बहिन जल में बैठी मुट्ठी-भर बालुका से घुमा-घुमाकर लोटा माँज रही थी।

पास ही किनारे पर कोमल बालोंवाला एक छोटा भेंड़ का बच्चा भी चर रहा था।

चरते-चरते, जहाँ वह बालक बैठा हुआ था वहाँ आकर भेंड़ का बच्चा ज़ोर से बोल उठा जिससे बालक अचानक सहमकर रोने लगा।

बरतन माँजना छोड़कर उसकी बहिन उसके पास दौड़ी हुई आई।

उसने एक ओर अपने छोटे भाई को तथा दूसरी ओर भेंड़ के मेमने को अपनी गोद में उठा लिया तथा प्रेमपूर्वक दोनों को चुमकार कर उसने उन दोनों, पशु तथा मनुष्य के शिशुओं को, एक ही प्रेम-सूत्र में बाँध दिया।

७८
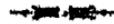
गरमी के दिन थे। उष्ण तथा निर्वात मध्याह्नकाल अत्यन्त ही लम्बा तथा दुस्तर बोध होता था। शुष्क पृथिवी गरमी से मुँह खोले हुये तृषार्त्त-सी हो रही थी।

इतने ही में मैने सुना कि नदी-तट से कोई पुकार रहा है, "मेरी प्यारी ! आओ।"

मैने झट पुस्तक बन्द करके देखने के लिए उत्सुकता-पूर्वक खिड़की खोली।

देखता क्या हूँ कि कीचड़ में लथ-पथ एक बड़ी-सी भैंस नदी-तट पर खड़ी सन्तोषपूर्वक शान्तियुक्त नेत्रो से देख रही है तथा एक युवा पुरुष घुटने-घुटने जल में खड़ा उसे स्नान कराने के हेतु बुला रहा है।

मै इस पर मुदित होकर मुस्करा पड़ा तथा मेरे हृदय में एक अनिर्वचनीय माधुर्य का स्पर्श-सा अनुभव हो उठा।

७६
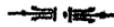
मैं बहुधा सोचा करता हूँ कि उन मनुष्यो तथा पशुओ के पारस्परिक परिचय की परिधि कहाँ छिपी हुई है जिनके हृदयो को अपने भावो के व्यक्त करने तक की भाषा नही ज्ञात है।

अतीत काल की किसी प्राथमिक स्वर्गस्थली के किसी सुदूरवर्त्ती सृष्टि के प्रभात में वह कौन-सा सरल मार्ग था, जिस पर उनके हृदयो की परस्पर भेंट हुई थी।

यद्यपि उनके बीच का सम्बन्ध बहुत काल पूर्व ही विस्मृत हो चुका है तथापि, उनके परस्पर पर्यटन करने के वे पदचिह्न अभी तक नहीं मिट पाये हैं।

अब भी, अचानक, कभी-कभी किसी शब्दहीन संगीत द्वारा वह पूर्वस्मृति जागृत हो उठती है और पशु, मनुष्य के नेत्रो की ओर स्नेहजनित विश्वास की दृष्टि से देखता है तथा मनुष्य, कौतूहलयुक्त प्रेम की दृष्टि से पशु की ओर देखता है।

ऐसा प्रतीत होता है, मानो यह दोनो मित्र छद्मवेश में मिले हैं तथा अपने बाह्यवेश को भेदकर वे दोनों अस्पष्ट रूप से एक दूसरे को पहिचान लेते हैं।

सुभगे ! तुम अपने एक कटाक्षमात्र से कवियों की वीणातन्त्री से निस्सरित गायनों की सुन्दर सम्पदा अपहरण कर सकती हो।

परन्तु,—उनकी प्रशंसा पर तुम कान नहीं देती हो और इसी हेतु मैं तुम्हारी स्तुति करने को आया हूँ!

ससार के बड़े-बड़े अभिमानियों के भी मस्तकों को तुम अपने चरणों पर झुकवा सकती हो।

परन्तु,—तुम अपने ख्यातिरहित प्रेमिको की ही पूजा करती हो और इसी हेतु मैं भी तुम्हारा पूजन करता हूँ!

तुम्हारे कोमल करो की आगरता अपने स्पर्श द्वारा राजश्री को भी यश से संयुक्त करने के योग्य है।

परन्तु,—तुम अपने उन करों का उपयोग अपने साधारण गृह को बुहारने तथा परिमार्जित करने में करती हो और इसी कारण मैं अत्यन्त ही आतंकित हो रहा हूँ!

८१
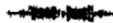
तुम इतने क्षीण स्वर से क्यों मेरे कानों में बात कहते हो, मृत्युदेव ! मेरे मृत्युदेव !!

जब सन्ध्यासमय पुष्प कुम्हलाने लगते है तथा पशु अपने थानों पर लौट आते है, उस समय तुम चुपके से मेरे पार्श्व में आते हो तथा कुछ ऐसी-ऐसी बाते कहते हो जो मेरी समझ में ही नही आतीं।

क्या प्रेम करने का तुम्हारा यही ढंग है ? क्या तुम अपने आलस्यजनित अस्फुट शब्दो तथा अपने हिमचुम्बनों की ही निद्रोत्पादक मदिरा पिलाकर मुझ पर विजय प्राप्त करोगे, मृत्युदेव ! मेरे मृत्युदेव !!

क्या हम तुम दोनों के विवाह के उपलक्ष में सुन्दर उत्सव न होंगे ?

क्या तुम अपने ताम्रवर्ण जटाजूटो को पुष्पहारो से बाँधोगे नहीं ?

क्या तुम्हारी पताका लेकर तुम्हारे आगे-आगे चलनेवाला कोई नहीं है तथा क्या तुम्हारी रक्तवर्ण की मशालों के प्रकाश से रात्रि आलोकपूर्ण न होगी, मृत्युदेव ! मेरे मृत्युदेव !!

अपने शंखों की तुमुल-ध्वनि करते हुए आओ; निद्रा-रहित रात्रि के समय आओ !

मुझे एक रक्तवर्ण की ओढनी से सुसज्जित करके मेरे हाथ पकड़ लो और मुझे ले चलो !

मेरे द्वार पर व्यग्रतापूर्वक हिनहिनाते हुए अश्वों से संयुक्त अपना रथ प्रस्तुत रखो ।

मेरा घूँघट उठाओ और गर्व से मेरे मुख की ओर देखो, मृत्युदेव ! मेरे मृत्युदेव !!

किसी अस्पष्ट माधुर्य के अनन्त कुहासे मे वह लीन हो गई। मेरे स्पर्श करने पर वह उत्तर न देती तथा मेरे गायन भी उसे जगाने मे असमर्थ थे।

आज की रात भयावह नेपथ्य से हम दोनो को आँधी का आमन्त्रण मिला है।

मेरी बधू काँपकर उठ खड़ी हुई; उसने मेरा हाथ पकड़ा और बाहर निकल आई।

उसके केश हवा में उड़ रहे हैं, उसका घूँघट काँप रहा है तथा उसका हार उसके वक्षस्थल पर दोलायमान हो रहा है।

मृत्यु के धक्के ने उसे पुनः सजीव कर दिया है।

अब हम आमने-सामने तथा हृदय से हृदय मिलाये प्रगाढ़ आलिंगन में लीन खड़े हैं,—हम और हमारी बधू !!

८३
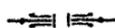
पहाड़ी के नीचे मकाई के खेत के किनारे वह उस जल-स्रोत के तीर पर रहा करती थी, जो उल्लसित हिलोरें लेता हुआ पुरातन वृक्षों की गम्भीर छाया में बहता था। स्त्रियाँ वहाँ अपनी झारियाँ भरने आती तथा श्रान्त पथिक वहाँ बैठकर विश्राम तथा वार्तालाप करते। वहाँ वह कल्लोलकारी स्रोत की सुमधुर ध्वनि मे लीन रह कर ही अपने दैनिक कार्य करती तथा विचारों के स्वप्न-सागर का आनन्द लिया करती।

मेघावृत्त उपत्यका पर से एक दिन वह आगन्तुक आया। उसकी जटा निद्रित सर्पों की भाँति उलझी हुई थी। हम लोगों ने उससे साश्चर्य पूछा, "आगन्तुक, तुम कौन हो?" परन्तु उसने कोई उत्तर न दिया तथा शब्दायमान स्रोत के किनारे बैठकर मूकभाव से उसकी कुटी की ओर देखने लगा। आगन्तुक के इस विचित्र व्यवहार को देखकर आशंका से हमारे हृदय धड़कने लगे और जब रात्रि हो गई तब कही हम लोग अपने-अपने घर लौटे।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब स्त्रियाँ स्रोत से जल भरने को देवदारु के वृक्षों के झुरमुट के समीप पहुँची तो उनको उसके आवास का द्वार खुला मिला। अब न तो वहाँ

उसके बोलने के शब्द ही सुनाई पड़ते और न उसका प्रफुल्लित मुख ही दिखाई देता। पृथिवी पर एक झारी खाली पड़ी हुई थी तथा दीप अपने कोने मे जलकर बुझ चुका था। किसी को भी ज्ञात नही था कि प्रभात से पूर्व ही वह चली कहाँ गई, और—वह आगन्तुक भी तो वहाँ से चला गया था!

ज्येष्ठ-मास मे जब सूर्य की प्रखरता से हिमराशि पिघली, तब हम सब स्रोत के किनारे पर बैठकर शोक से विह्वल हो उठे। हम सभी आश्चर्यसहित सोचते, "जहाँ वह गई है, क्या वहाँ भी कोई ऐसा स्रोत है जिसमें वह इस तृषा-जनक भयंकर गरमी में अपनी झारी भर सके।" दुःख से हम सब एक दूसरे से पूछते, "हमारे रहने के इस स्थान से परे, इस पार्वत्य प्रदेश के उस ओर, क्या कोई और स्थान भी है?"

ग्रीष्मऋतु की रात्रि का समय था, दक्षिणी पवन चल रही थी तथा मैं उसके रहने के उसी जनशून्य कमरे में बैठा हुआ था, जहाँ पर अब तक दीप जलाया नहीं गया था। अचानक परदे हट जाने की भाँति वह पहाड़ी मेरे दृष्टि के सामने से हट गई। "अहा! यह तो वही चली आ रही है! वत्से, तुम प्रसन्न तो रही, कहो, कैसी हो? परन्तु इस

खुले आकाश के नीचे तुम आश्रय कहाँ लेती होगी ? और हाय! हमारा वह स्रोत भी तो यहाँ नहीं है जिससे तुम्हारी तृषा शान्त हो सकती !"

उसने उत्तर दिया, "यहाँ भी वही आकाश है, परन्तु यहाँ वह अवरोधक पहाड़ियों से सीमित नहीं है,—यहाँ पर भी वही जलस्रोत है, परन्तु यहाँ वह बढ़कर एक नदी के रूप में हो गया है,—यहाँ भी वही पृथिवी है, परन्तु वह एक अत्यन्त विस्तृत समस्थली के रूप मे है !"

मैने उसाँस लेकर कहा, "यहाँ सब कुछ तो है; हमी लोग नहीं है !"

उसने बिषादपूर्वक मुस्कराकर उत्तर दिया, "परन्तु तुम मेरे हृदय में तो हो !"

मैं जग पड़ा,—मुझको स्रोत के बहने का कलकल शब्द तथा रात्रि में देवदारो की खड़खड़ाहट फिर सुनाई पड़ने लगी।

८४
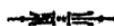
हरित तथा पीतवर्ण के धान के खेतों पर फागुन के मेघ अपनी परछाही डालते उड़े चले जा रहे है और भगवान् मरीची तीव्र वेग से उनका पीछा कर रहे है।

मधुमक्खियाँ उस ऋतु के प्रकाश-पान से उन्मत्त होकर मूर्खतापूर्वक इधर से उधर गुनगुनाती फिरती हैं तथा अपना मधुपान करना भी भूल गई हैं।

नदी के बीच के टापुओ पर कलहंस अकारण ही हर्षध्वनि कर रहे हैं।

भाई! आज कोई अपने घर न जाना और न कोई आज अपना काम-काज करना।

आओ! आज हम सब अचानक सुनील आकाश पर धावा कर दे और शून्य वायुमंडल की संपदा भागते-ही-भागते लूट लें।

बाढ के पानी के ऊपर जिस प्रकार फेन उतराता है उसी भाँति हास्य आज वायु में व्याप्त हो रहा है।

भाइयो, आओ हम सब अपना प्रभात निरर्थक गायनों में ही नष्ट कर दें।

८५
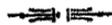
आज से सैकड़ों वर्षों के पश्चात् मेरे काव्य को पढ़नेवाले पाठक ! तुम कौन हो ?

यहाँ की इस वसन्त-सम्पत्ति मे से मै तुमको एक पुष्प भी प्रेषित करने मे असमर्थ हूँ तथा अपने सामने की इस मनोहर मेघमाला की एक सुवर्णमयी किरण भी तो नहीं भेज सकती !

अपना द्वार खोलकर चारों ओर बाहर देखो तो सही !

अपनी प्रफुल्लित वाटिका से तुम सैकड़ों वर्षों पूर्व के लुप्त पुष्पों की सुगन्धित स्मृतियाँ संकलित कर लो !

ईश्वर करे तुम अपने हृदय की प्रसन्नता के साथ-साथ उस सजीव आनन्द का भी अनुभव करो जिसने किसी अतीत वसन्तकालीन प्रभात मे गा-गाकर अपनी प्रफुल्लित तान सैकड़ों वर्ष आगे तक पहुँचाया था !

इति ।

प्राथमिक शब्दों की तालिका

अ

आ

इ

उ

ए

संख्या

क

ग

ज

त

द

न

प

संख्या

ब

म